जनवरी - मार्च २००५

कथाबिंब

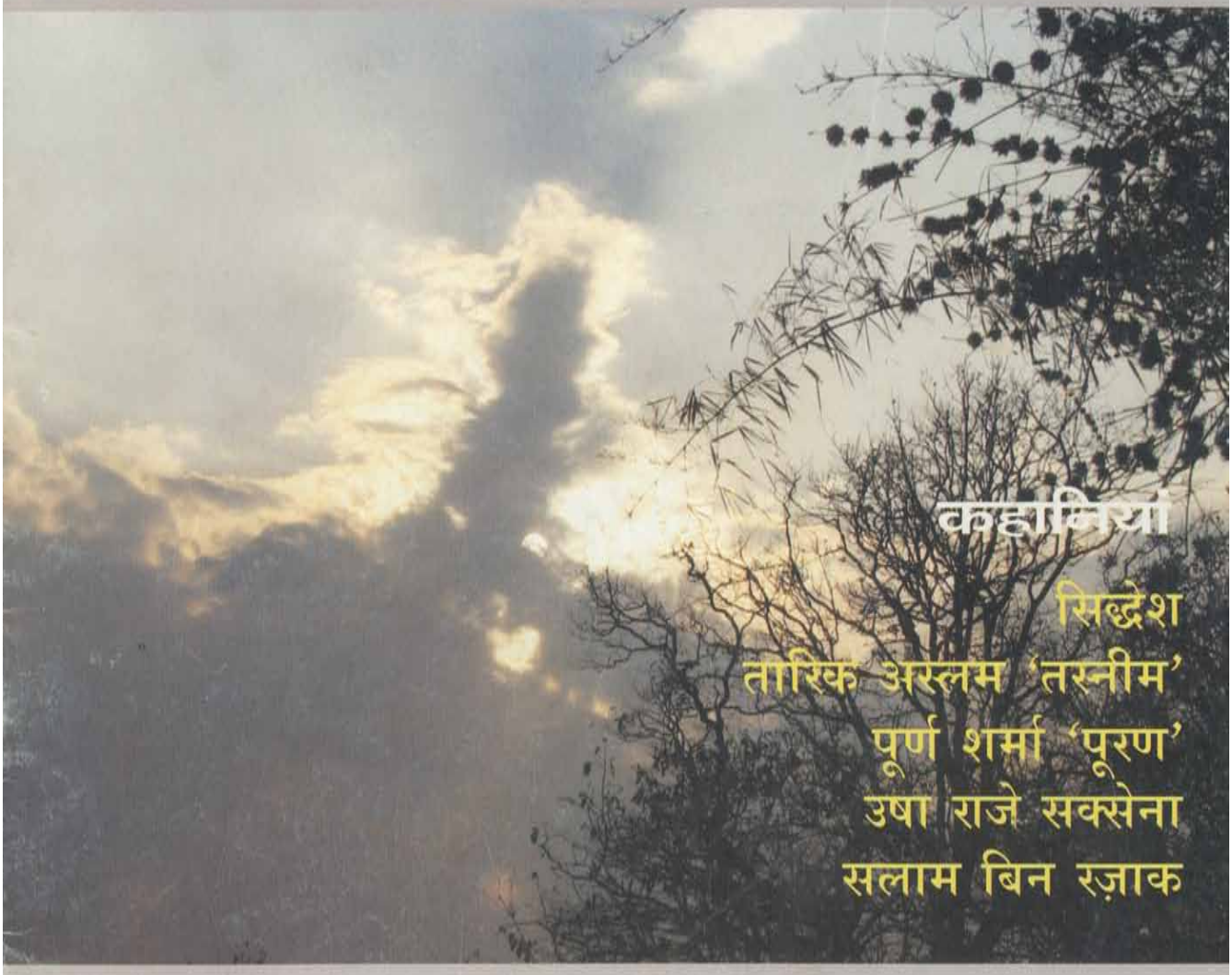

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

आमने-सामने
सलाम बिन रज़ाक

सागर-सीपी
रामदरश मिश्र

१५ रुपये

मुंबई से शिकागो जाते हुए
लेखक और सहयात्री
श्री प्रदीप चौधरी.

ओलेंगटैंगी नदी के पुल पर
लेखक और शोध-सहयोगी
डॉ. अशोक जाधव.

गंगा के किनारे लेखक,
पत्नी मंजुश्री और
शल्य-चिकित्सक भतीजा
डॉ. विजय मोहन दास.

(छायाचित्रों के संदर्भ के लिए कृपया पृष्ठ-३२ पर 'वातायन' स्तंभ देखें.)

जनवरी - मार्च २००५
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●
आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●
ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१५५४१
e-mail : kathabimb@yahoo.com

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक
अरुण सक्सेना
फोन : २३६८ ३७७५

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
१५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ५ || भारत पूअर सोसायटी / सिद्धेश
|| ९ || हेलीकॉप्टर / तारिक अस्लम 'तस्नीम'
|| १३ || कुछ तो बाकी है ! / पूर्ण शर्मा 'पूरण'
|| १७ || एलोरा / उषा राजे सक्सेना
|| २१ || कोहरा / सलाम बिन रज़ाक

लघुकथाएं

|| ८ || खोज / डॉ. सी. भास्कर राव
|| ४५ || एकदम दादाजी जैसा / एंटोन चेखव
|| ४६ || भूत / डॉ. योगेंद्रनाथ शुक्ल
|| ४६ || रक्तदाता / राजकुमार आत्रेय

कविताएं / गीत / ग़ज़लें

|| १२ || ग़ज़लें / सुधीर कुशवाह
|| १६ || आजकल शेरी ब्लेयर को... / तेजेंद्र शर्मा
|| २४ || ग़ज़लें / छंदराज
|| ४१ || सम्मोहन / मधु प्रसाद
|| ४२ || मन सौगान हुआ / मधु प्रसाद
|| ४२ || टेम्स का पानी / तेजेंद्र शर्मा
|| ४३ || ग़ज़लें / विकास व अनिरुद्ध सिन्हा
|| ४४ || ग़ज़लें - नवगीत / भोला पंडित 'प्रणयी'

स्तंभ

|| २ || लेटरबॉक्स
|| ४ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| २५ || आमने-सामने / सलाम बिन रज़ाक
|| २८ || सागर-सीपी / रामदरश मिश्र
|| ३२ || वातायन / डॉ. अरविंद
|| ३४ || पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण फोटो : *नमित सक्सेना*

लेटर बॉक्स

"कथाबिंब" अक्तू-दिसं. ०४ अंक मौसूल हुआ. सभी रचनाएं स्तरीय और ख़ूबसूरत हैं. आपको और इस अंक के सभी रचनाकारों को मुबारकबाद. जनाब डॉ. देवेंद्र सिंह की कहानी 'बिरादरी' और संगीता आनंद की कहानी 'एक थी सांवली' दोनों ही इक्कीसवीं सदी की हालात की सच्ची तस्वीरें हैं. हालात और माहौल से मजबूर होकर इंसान ग़लत रास्ते पर कदम रख देता है, इस हक़ीक़त की निशानदेही 'बिरादरी' में फनकाराना अंदाज से डॉ. देवेंद्र सिंह ने की है. औरत ज़ात के इस्तहसाल और ग़म-व-अलम को संगीता आनंद ने हुनरमंदी के साथ ज़बान अता की है. औरत के शोषण में समाज के दानिशवर तबक़े का भी बहुत नुमायां हाथ होता है. इस कहानी के ज़रिया यह अहसास पूरी तरह रौशन हो गया. आपके संपादकीय के इबतेदाई सतरों ने उस दर्द को बेदार कर दिया जिसको सहन करते हुए आपने "कथाबिंब" को अब तक ज़िंदा रखा है. "नौकरी, अनुसंधान कार्य, पढ़ाई, बढ़ते परिवार की ज़िम्मेदारियां...!" इन मुश्किल हालात के दौरान भी आपने जवांमर्दी का सबूत देते हुए क़दम-क़दम मंज़िल की सिम्त बढ़ाया. बेशक आप सितारे तोड़ने की कोशिश में लगे हुए लोगों के लिए रौशन मिसाल हैं. जनाब प्रकाश श्रीवास्तव, नूर मुहम्मद 'नूर' की ग़ज़लें बतौर ख़ास पसंद आयीं.

चला जाता हूं हंसता, खेलता मौजे हवादिस में।
अगर आसानियां हों, ज़िंदगी दुश्वार हो जाये ।।

आप और "कथाबिंब" के लिए दुआगो हूं.

✣ डॉ. नसीम अख़्तर

मतलउल-उलूम, जे. २६/२०५, कमलगढ़ा, वाराणसी-२२१००१

"कथाबिंब" का अक्तू-दिसं ०४ अंक मिला. पहले पद्यांश पढ़ा. नूर मोहम्मद 'नूर' की ग़ज़लें अंक की उपलब्धि हैं.

इसके बाद समीक्षाएं पढ़ीं. श्री गोवर्धन यादव ने श्री पंकज जी के ग़ज़ल-संग्रह 'दीवार में दरार' की बहुत संतुलित समीक्षा की है. वैसे श्री विजय और डॉ. बड़ोले ने स्वाति तिवारी एवं भूरिया / चंचल की पुस्तकों की बड़ी अच्छी समीक्षाएं की हैं. पुस्तकें पढ़ने के प्रति ललक जाग उठती है.

लघुकथाओं में श्री प्रताप सिंह सोढ़ी एवं सतीश राठी ध्यान खींचते हैं. कथाकार /उपन्यासकार डॉ. जगदंबा प्रसाद दीक्षित ने अपने साक्षात्कार में बहुत अच्छे उत्तर दिये हैं. बिना मुलाहिजा. अच्छे लगे.

✣ चंद्रसेन 'विराट'

'समय' १२१, वैकुंठधाम कॉलोनी, ओल्ड पलासिया, इंदौर - ४५२०१८

पत्रिका (अक्तू-दिसं. ०४) मिली. हार्दिक आभार ! ..."कथाबिंब" जो मानसपुत्र है आपका और जिस पर अभिमान है सौद्देश्य, सतत साहित्य नवजागरण को अब युवा हो गया है - लक्षाधिक बधाइयां !!

नरेंद्र कौर छाबड़ा की कहानी 'खेल' एक व्यवहारिक सत्य और बाल-मनोविज्ञान का अटल सामंजस्य है. हाइटेक चाइल्डहुड की प्रखर बानगी है जहां 'खेल' कहानी में, वहीं श्रद्धेय (कथा शिल्पी) भाई देवेंद्र सिंह की कहानी 'बिरादरी' मानवीय संदर्भों और नैतिक विलोपन की एक सचेतक अभिव्यक्ति है. यदि शब्दों और कथा विधा तक सिमटी न रहें ये रचनाएं, तो निश्चित ही प्रेरक एवं शिक्षाप्रद हैं दोनों कहानियां. दोनों कहानियों के सभी पात्र हमें अपने ही भीतर अपने ही आसपास टहलते, दिखते हैं - 'बिरादरी' की मामी भी, सुनील भी, रामपदारथ भी और 'खेल' के रेणु-अतुल (दंपति) हैं ही तो हर 'परिपक्व खेल' को खेल ही लेने को आमदा 'विकी-सलोनी' का 'अपरिपक्व बालमन' भी.

संगीता आनंद की कहानी 'एक थी सांवली' कथा रूप में औरत की त्रासदी और समाज की कई असंगतियों का खुला दस्तावेज है. यह कहानी का शिल्प ही है कि कथाकार ने सभी प्रश्नों को बड़े ही मनोयोग से समाज के गालों पर साधा है और अगले ही क्षण मरहम-पट्टी भी की है. यथा "छी: खुद चरित्रहीन होकर...करता है...!" या "यह तो ठीक है मां,....क्यों झोंक दिया जाता है ? मंज़िल नहीं होती ?" और फिर कि "औरत का अस्तित्व इतना बेचारा नहीं...आधार देना चाहिए..." बहुत दिनों के बाद संगीताजी पूरे फॉर्म में दिखी हैं - बधाई उन्हें इस यादगार कहानी के लिए.

'सागर-सीपी' और 'आमने-सामने' स्तंभ कथाबिंब के हर अंक को समृद्धतर एवं संग्रह योग्य करते जा रहे हैं.

✣ मनोज सिन्हा

"मायाकुंज" (आदर्शपुरी), ओकनी, हजारीबाग (झारखंड)

अपने एक परिचित द्वारा "कथाबिंब" का अक्तू-दिसं. ०४ का अंक पढ़ने हेतु प्राप्त हुआ, बहुत अच्छा लगा.

सतना के डॉ. परमलाल गुप्त का पत्र पढ़कर मुझे भी यही लगता रहा कि डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम' ख़ुशफ़हमियों में जी रहे हैं और वास्तविकता को दरकिनार करते हुए किसी भी तरह से साहित्यिक क्षेत्रों में रातों रात स्थापित होने के जुगाड़ में लगे हुए हैं. लेकिन 'बहुत कठिन है डगर पनघट की....' वाली बात है. डॉ. परमलाल गुप्त ने श्री 'तस्नीम' को उनकी वास्तविक स्थिति समझा कर एक प्रकार से श्री 'तस्नीम' का मार्गदर्शन ही किया है जो कि आवश्यक भी था.

'आत्महंता' कहानी रोचक होने के साथ-साथ आंखें खोलने वाली भी थी.

✣ डॉ. राम पाल शर्मा

गढ़ा ब्रहमानां, अखनूर, जम्मू-१८१२०१

✣ "कथाबिंब" २५ वर्ष का हो गया. अपन ही जानते हैं, कैसे आपके २५ वर्ष और मेरे ३२ वर्ष निकले हैं. ऐसी पीड़ा अपन क्यों भोग रहे हैं ? कभी-कभी तो दर्द बहुत सालता है, पर फिर उसी ओर मानस चल पड़ता है. हिंदी की पीड़ा भी तो यही है कि पाठक ही रचनाकार हैं और रचनाकार ही पाठक ! किसे क्या कहें ? सोहन शर्मा की कहानी बहुत अच्छी लगी. समय मिला तो अंक पर विस्तार से फिर लिखूंगा.

✣ डॉ. कृष्ण बिहारी सहल

सं. 'तटस्थ', 'विवेकानंद विला', पुलिस लाइन्स के पीछे,
सीकर (राज.) - ३३२००१.

✣ "कथाबिंब" का अक्तू-दिसं. ०४ अंक यथा समय प्राप्त हो गया था. व्यस्तताओं की अधिकता और मतदान की नैतिकता के कारण कुछ विलंब से पत्र लिख रहा हूं.

'कथाबिंब' ने रजत जयंती वर्ष पूरा किया है अतः अंक की तारीफ़ करना दुहराव सा लगेगा. वैसे अंक में सैली बलजीत और संगीता आनंद की कहानियां ज़्यादा अच्छी लगीं. कविताओं में नूर मुहम्मद की ग़ज़लें सलीकेदार हैं.

✣ राजेंद्र तिवारी

तपोवन, ३८-बी, गोविंद नगर, कानपुर-२०८ ००६.

✣ "कथाबिंब" (अक्तू-दिसं. ०४ अंक) में प्रकाशित भाई देवेंद्र जी की कहानी में सुनील का यह कथन कि 'सब लोग चोर और बेईमान ही हो जायेंगे तो समाज का, संसार का क्या हाल होगा ?' रचना की सार्थकता सिद्ध करता है. देवेंद्र जी की रचनाधर्मिता साहित्यकारों की बिरादरी में उनको एक अहम मुकाम देगी - यह मेरा विश्वास है. बच्चों में समय से पूर्व सांसारिकता का अतिबोध, अति आधुनिकता का परिचायक ही नहीं बल्कि पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक मूल्य बोध के लिए ख़तरे की घंटी है. मीडिया का घटिया स्तर और घोर व्यावसायिक दृष्टिकोण विशेषकर टेलीविजन के विभिन्न चैनलों द्वारा परोसा गया प्रदूषित मनोरंजन इस ख़तरे का बड़ा कारक है. मूल्यबोध वाले अभिभावकों के लिए स्वयं और अपने पाल्य को इस ख़तरे से बचाना एक चुनौती भरा मुश्किल कार्य है. इसके लिए बुद्धिजीवी वर्ग को शीघ्र ही आगे आना चाहिए अन्यथा नयी पीढ़ी शनैः शनैः रुग्ण होती चली जायेगी. नरेंद्र कौर जी को इस चेतावनी के लिए धन्यवाद. प्रकाश श्रीवास्तव और नूर मुहम्मद 'नूर' की ग़ज़लें अच्छी लगीं. 'वातायन' और 'सागर/सीपी' में व्यक्त विचार प्रेरणास्पद और सार्थक लगे. इस अंक की प्रस्तुति के लिए बधाई.

✣ डॉ. प्रेमचंद्र पांडेय

प्रशस्तडीह-घोघा, भागलपुर

✣ "कथाबिंब" का अक्तू-दिसं. ०४ अंक विलंब से ही सही, किंतु अपने तेवर के अनुरुप मिला. सबसे पहले कथाबिंब के २५ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में बधाई स्वीकारें. लघुपत्रिका के इतिहास में बहुत कम ऐसी पत्रिकाएं हैं. जिन्होंने अपना स्तर कायम रखते हुए २५ वर्ष की लंबी यात्रा तय की हो ! यह आप जैसे जुझारु रचनाकार द्वारा ही संभव था. इस पत्रिका का मैं बहुत पहले से कवि, लघुकथाकार रहा हूं. इसलिए मैं भी गर्व का अनुभव कर रहा हूं.

इस अंक में सुधीर अग्निहोत्री की कविता बहुत दिनों के बाद गांव की गंध से परिपूर्ण लगी. 'आमने-सामने' के अंतर्गत प्रकाश श्रीवास्तव ने बहुत बेबाकी से अपने विचारों को हमारे सम्मुख रखा है. उनके भीतर के ईमानदार रचनाकार से हम रु-ब-रु होते हैं. श्रीमती मधु प्रकाश द्वारा डॉ. जगदंबा प्रसाद दीक्षित से ली गयी भेंटवार्ता भी महत्वपूर्ण लगी. 'कथाबिंब' में प्रकाशित भेंटवार्ताओं का अपना अलग महत्व होता है. इन भेंटवार्ताओं को आप पुस्तक के रुप में छापें. यह नये लेखकों के लिए प्रेरणाप्रद होगा.

'नूर' ने ठीक लिखा है - 'बेवजह बात बेबात होती रही, ज़िंदगी से मुलाकात होती रही.'

✣ सिद्धेश्वर

पोस्ट बॉक्स नं. २०५, करबिगहिया, पटना-८०००००१.

✣ समकालीन कविता के जीवंत हस्ताक्षर भाई प्रकाश श्रीवास्तव को आपने प्रतिष्ठित पत्रिका "कथाबिंब" के 'आमने-सामने' के जरिए अक्तू-दिसं. ०४ अंक में प्रस्तुत किया. यह कार्य अपने आप में ऐतिहासिक और खोजपूर्ण है. कवि प्रकाश श्रीवास्तव ने काशी की लगभग तीन दशक की रचनाशीलता को अपने आलेख्य में संजो लिया है. यह उनकी लेखनी का कमाल है. काशी की समकालीन पीढ़ी आज भी अपनी जीवंतता बनाये हुए है. मेरे जैसे एक अदने से रचनाकार को उन्होंने अपने आलेख्य में महत्व दिया यह मेरे लिए और भी महत्वपूर्ण है. इस नामकाटू युग में प्रकाश ने जोड़ने का कार्य कर के काशी की समकालीन पीढ़ी को एक नयी ऊर्जा प्रदान की है.

'कथाबिंब' को मैं समकालीन रचनाधार्मिता का एक तीर्थ मानता हूं. आपका सफल संपादन दिन प्रतिदिन 'कथाबिंब' को स्थायित्व और जीवंतता प्रदान कर रहा है. निःसंदेह यह आपके श्रम, समर्पण और त्याग का प्रतिफल है. 'कथाबिंब' ने सिल्वर जुबली मनायी यह जुबलीन इतिहास कथाबिंब के साथ आगे भी जुड़ता रहे इन्हीं चपाचप शुभकामनाओं के साथ.

✣ अजित श्रीवास्तव

शिवकृपा - सी, ४/२०५ कालीमहल,
वाराणसी (उ. प्र.)

(...कुछ और प्रतिक्रियाओं के लिए कृपया पृष्ठ ४७ देखें)

कुछ कही, कुछ अनकही

वर्ष २००५ का यह पहला अंक रिलीज होते-होते आधे साल से कुछ अधिक का समय बीत गया. यह अंक जुलाई अंत तक ही आ सका है. देखा जाये तो प्रकाशन विलंब थोड़ा कम अवश्य हुआ है. फ़िलहाल, आगे भी हमारी कोशिश यही है कि बग़ैर संयुक्तांक निकाले, धीरे-धीरे ही सही, दो-तीन अंकों में पत्रिका अपनी समयावधि में ही प्रकाशित हो. पिछले कुछ अंकों के कलेवर में आये बदलाव को बहुत से पाठकों ने सराहा है. हम उन सबके हृदय से आभारी हैं.

●

अब इस अंक की कहानियों पर कुछ बात... सिद्धेश की कहानी 'भारत पूअर सोसायटी' उस 'देश' की कहानी है जो पचास-पचपन साल पहले वजूद में आया था. हर आदमी अपने देश के लिए कुछ करना चाहता था. लेकिन धीरे-धीरे यह ग़रीब देश पूरा का पूरा एंटी सोशल और चोर-उचक्कों के क़ब्ज़े में आगया है. अगली कहानी 'हेलीकॉप्टर' के माध्यम से तारिक़ असलम 'तस्नीम' ने बिहार के ताज़ा हाल बयान किये हैं - विधान सभा भंग हो जाने के बाद जंगल राज ख़तम हो गया है और राष्ट्रपति शासन लगने से फ़िलवक़्त लोगों ने राहत की सांस ली है. राजनीति ने भारत को पूरी तरह खोखला कर दिया है. एक छोटी सी घटना दंगा भड़काने के लिए काफ़ी होती है. राजनीतिज्ञों ने समाज को बांटने का कोई अवसर नहीं छोड़ा है, लेकिन आम आदमी इतनी जल्दी हार नहीं मानना चाहता. आपसी सौहार्द के रूप में अभी भी बहुत कुछ बाक़ी है (कहानी- 'कुछ तो बाक़ी है !' - पूर्ण शर्मा 'पूरण') लंदन में रहने वाली उषा राजे सक्सेना, जिन्हें इस वर्ष का इंदु शर्मा कहानी पुरस्कार (परमानंद साहित्य सम्मान - यू. के.) मिला है, की कहानी 'एलोरा' लंदन में रहने वाले एक भारतीय अप्रवासी परिवार की दो पीढ़ियों के विचारों के टकराव को बयान करती है. सलाम बिन रज़ाक की कहानी 'कोहरा' सात बच्चों वाले एक मुसलमान परिवार की व्यथा गाथा है. सबसे बड़ी लड़की जमीला अपनी ज़िंदगी में आये कोहरे से निजात पाने के लिए घर छोड़ने पर मजबूर हो जाती है किंतु 'कोहरा' इतनी आसानी से छंट नहीं पाता.

●

पिछले कुछ महीनों में घटे राजनीतिक घटनाक्रम से जुड़े ऐसे अनेक पहलू हैं जिन पर टिप्पणी करना चाहिए. किंतु स्थानाभाव के कारण यहां सबको ले पाना संभव नहीं है. झारखंड और बिहार में फरवरी में चुनाव हुए. चुनाव के परिणाम स्पष्ट रूप से किसी एक दल के पक्ष में नहीं थे. फिर भी शिब्बू सोरन के नेतृत्व वाले अल्प संख्यीय गठबंधन को राज्यपाल ने सरकार बनाने का न्यौता दिया. यह वही शिब्बू सोरन थे जिनके झारखंड मुक्ति मोर्चा के सांसदों ने बुरे वक़्त में 'मान्यनीय' नरसिम्हा राव की अल्पमत सरकार में प्राण फूंके थे और जिन पर सालों ख़रीद-फ़रोख़्त का मुकदमा चलता रहा था. ये ही सज्जन तमाम विरोध के बावजूद, डॉ. मनमोहन जी की सरकार में कोयला और खदान मंत्री के रूप में पदासीन हुए और फिर जब किसी पुराने मामले में वारंट जारी हुआ तो हफ्तों 'अंडरग्राउंड' रहे. सारा सरकारी तंत्र तलाश करता रह गया. जब लगा कि समय अनुकूल है तो आनन-फानन में अवतरित हो गये. यह कैसे होता है कि चाहे शिब्बू सोरन जी हों या शाहबुद्दीन, शिवानी हत्याकांड के आरोपी शर्मा हों या गौतम गोस्वामी फ़रार हो जाते हैं और सिर्फ़ मीडिया वालों को छोड़ कर उनका पता-ठिकाना किसी को मालूम नहीं पड़ पाता !

झारखंड में तो उच्चतम न्यायालय के हस्तक्षेप से सरकार बन गयी लेकिन बिहार में फिर वही 'ढाक के तीन पात', बने तो लालू की सरकार बने नहीं तो किसी की नहीं. चाबी पासवान जी के पास थी, पर उन्होंने अपना राग क़ायम रखा कि मुख्यमंत्री मुसलमान होना चाहिए. यहां तक कि अपनी सभाओं में बिन लादेन के एक हमशक़्ल को वे हमेशा साथ रखते थे. अगर कहीं ऐसा हो जाता और लालू मान जाते तो पासवान फिर व्यर्थ ही मसीहा न जाते और बिहार के सारे मुस्लिम वोट हमेशा के लिए उन्हीं के हो जाते. बहुत कठिन गणित था. कोई गोटी फिट नहीं बैठ पा रही थी. जैसे ही ज्ञात हुआ कि कोई दूसरा गठबंधन समर्थन जुटाने के निकट है तो तुरंत राज्यपाल महोदय ने बिना किसी को मौक़ा दिये, मात्र ख़रीद-फ़रोख़्त की संभावना पर अपने विशेषाधिकार का उपयोग कर प्रधानमंत्री और केंद्रीय गृहमंत्री को विधान सभा भंग करने की सलाह दे डाली. शायद उस समय रात के दस बजे थे. मान्यनीय राष्ट्रपति रूस में थे. रात के ढाई बजे वे अपने 'लैपटॉप' कंम्प्यूटर पर अगले दिन के 'प्रजेंटेशन' की तैयारी कर रहे थे. उनसे 'फैक्स' द्वारा आदेश प्राप्त कर उसी रात विधान सभा भंग कर दी गयी. यह १९७५ में आपात्काल के अध्यादेश की घोषणा सदृश्य ही था. लेकिन मीडिया में जितनी तीखी प्रतिक्रिया होनी चाहिए थी, नहीं हुई. इस संबंध में कई जनहित याचिकाएं दायर की गयी हैं और संभावना है कि उच्चतम न्यायालय चुने हुए प्रतिनिधियों के पक्ष में फ़ैसला दे. अगर ऐसा हुआ तो इतनी जल्दी बिहार की जनता को दोबारा चुनाव नहीं झेलना पड़ेगा.

पिछले आम चुनावों के बाद से भाजपा सकते में है. कई बार चिंतन बैठकें हुईं पर किन कारणों से हार हुई यह अभी तक तय नहीं हो पाया है. इधर मीडिया का एक बड़ा वर्ग एक सोची-समझी रणनीति के तहत भाजपा को तोड़ने की कोशिश में जी जान से लगा है. पहले, इंडियन एक्सप्रेस के संपादक शेखर गुप्ता द्वारा लिये गये एक साक्षात्कार में रा. स्वयंसेवक संघ के सुदर्शन जी से एक प्रश्न किया गया कि क्या आपको नहीं लगता कि उम्रदराज़ लोगों को भाजपा का नेतृत्व छोड़ देना चाहिए ? तो उत्तर था, हां, नये लोगों को आगे आना चाहिए. इस साक्षात्कार के अंशों को बार-बार टी. वी. पर दिखा कर और अख़बारों में छाप कर सारा बवाल मचाया गया. लेकिन आज तक किसी मीडिया वाले ने कभी नहीं पूछा कि ज्योति बसु या सुरजीत सिंह जी आप सन्यास लेकर बुढ़ापे में घर क्यों नहीं बैठते ? क्या मार्क्सवादियों का कभी रिटायरमेंट नहीं होता ?

(कृपया शेष भाग पृष्ठ ४७ पर देखें)

कहानी

भारत पूअर सोसायटी

समीर को हमेशा लगता रहा है कि मकानों के सामने अगर एक पार्क है, तो इसमें क़रीने से सजी हुई फुलवारी क्यों नहीं है ? फूल पौधे नहीं हैं, हरे-भरे पेड़ों पर रंग-बिरंगे पक्षी नहीं हैं. न तो धूप सेंकने के लिए किनारों पर लगे बेंच हैं और न घास का गलीचा है कि लोग बैठकर 'हरी घास पर क्षण भर' का आनंद ले सकें. बस, ऊबड़-खाबड़ ज़मीन का सिलसिला. एक किनारे पर फेंके गये जंजालों के ढेर. फेंस के लिए बने लोहे के सीख़चों के ऊपर यहां से वहां तक बस्ती के बाशिंदों के धोये कपड़े सूखते रहते हैं. पक्षियों के नाम पर मुस्तंडे कौओं के गिरोह को इधर से उधर दौड़ने भागने के अलावा कोई काम नहीं. आसपास रहने वाले अल्पसंख्यकों के बच्चे दिन-रात मैदान में खेलते रहते हैं. पार्क को खेल का मैदान बना दिया है. दिन में क्रिकेट, फुटबाल तो रात में ताश और जुआ. बच्चे से लेकर बेकार युवा तक इनमें शामिल रहते हैं.

समीर को लगता है कि अगर इतने सारे बच्चे जो दिन-दिन भर खेलों में मगन रहते हैं आख़िर पढ़ते कब हैं ? इनका स्कूल किधर है, कहां से ये इतने मासूम बच्चे निकल आते हैं? इनका भविष्य क्या है ? ये इसी तरह बढ़ते रहे तो इस देश का क्या होगा ? समीर ने देखा कि पार्क में कई उचक्के टाइप के छोकरे मोटर बाइक पर घुस आये हैं और आपस में सलाह-मशविरा कर रहे हैं. पता नहीं इनका क्या इरादा है. शाम के झुटपुटे में ठीक नज़र नहीं आ रहे. दो-तीन चक्कर लगाकर बड़े गेट से बाहर निकल गये. थोड़ी देर में दो बंदूकधारी कांस्टेबल आ गये और अंधेरे कोने में आकर खड़े हो गये.

समीर को लगता है कि अब कुछ होने वाला ही है. वह अंधेरे में बाल्कनी के किनारे आकर खड़ा हो गया. वह आज ही कुछ दिनों की छुट्टी लेकर यहां अपने सरकारी नौकरी में लगे भाई के पास आ गया था. वह साल भर बाहर ही बाहर रहा. समीर जहाज़ी है. जहाज़ पर सुमद्र में एक दुनिया से दूसरी दुनिया में आते-जाते समय बीतता है. छह-छह महीनों तक तो कभी साल-दर-साल बीत जाते हैं. जहाज़ पर से उतरकर समतल ज़मीन पर बसी दुनिया में पैर रखते हुए. अब तक शादी की नहीं. गनीमत है अन्यथा पत्नी-बच्चे से अलग-थलग पड़ जाता. बच्चे कैसे-कैसे बड़े हो रहे हैं, उसे देखकर अपनी नज़रों पर विश्वास नहीं होता. संचार-व्यवस्था में वैसे दुनिया अब मुट्ठियों में कैद हो गयी है, मगर इतना ही काफ़ी है ? बहरहाल, समीर अकेले ही मौज-मस्ती में रहता है. रात में डेक पर होने वाली रंगरेलियों में खोया रहता है. भर-भर बोतल शराब सस्ते में पीने को मिल जाती है. दिन में समुद्र की फेनिल लहरों से खेलता रहता है. शहरों से क्या वास्ता, ज़मीन की जड़ से उखड़ा महसूस करता है. विदेशी बैंकों में लाखों रुपये जमा होते रहते हैं.

समीर को लगता है, अब उसकी उम्र शादी और औरत के जिस्म की ललक को पार कर रही है. साल, छह महीने में जब कभी इस शहर से गुज़रता है, तब वह भाई मिहिर के इस सरकारी क्वार्टर में आता है. थोड़े दिनों के लिए ज़मीन से जुड़कर जीने के मकसद से दो-चार होता है, फिर जहाज़ पर चढ़ते ही जस का तस. रात में नींद आती नहीं, जागकर जहाज़ के हिचकोले और लहरों की अशांत आवाज़ में अपने को ग़र्क़ कर देता है. रात में जहाज़ उसके लिए क़ब्रगाह की तरह लगता है. दिन में फिर वही हलचल. जहाज़ में वह मैरीन-इंजीनियर है.

सिद्धेश

समीर को कभी-कभी लगता है, उसकी मौत भी जहाज़ पर होगी. उसके लिए सात फुट की ज़मीन मौत के बाद मयस्सर नहीं होगी. उसकी इच्छा होती है कि वह भाई के पास सब छोड़-छाड़कर रह ले. भारत में आकर एक छोटा-मोटा फ्लैट ही ख़रीद ले. यही सोचकर इस बार वह साल भर बाद भाई के पास छुट्टी लेकर आया है. जो दृश्य अभी थोड़ी देर पहले उसने देखा है, उसके लिए दहशत भरा है. उसने पार्क की तरफ़ फिर से झांक कर देखा. दृश्य बदल गया था. वे दो बंदूकधारी कांस्टेबल पार्क से गायब हो चुके थे. पार्क सुनसान पड़ा था. दिन में पार्क को देखकर लगा था कि बच्चों, बूढ़ों, युवा सबों ने पार्क को अपना हिस्सा बना लिया है.

उसने उत्सुकतावश मिहिर से पूछा था, 'शहर में इतने-इतने ख़ूबसूरत पार्क बने हैं, यही क्यों ऐसा पड़ा है ?'

मिहिर ने हंसकर टालना चाहा, मगर उसने सोचा अगर बड़े भैया समीर को इसके रहस्य को नहीं बताया तो वह अशांत रहेगा फिर इस ज़मीन से जुड़ने की बात उसके लिए अधूरी रह जायेगी. समीर इस शहर में आकर बसना चाहता है, इसलिए उसके लिए यहां की स्थिति से वाकिफ़ होना ज़रूरी है. हालात किस कदर बदतर हो रहे हैं.

'भैया, यह इलाका ही ऐसा है.'

'क्या मतलब ?'

'अब क्या बताऊं. मुझे तो सरकारी क्वार्टर मिल गया यहां! वरना, आसपास बस्ती ही बस्ती है. ये इसी तरह जीना सीख गये हैं. ग़रीबी की मार से पिटे हुए लोग हैं.'

'इससे पार्क का क्या संबंध है ? सामने वाला यह तो पार्क लगता ही नहीं. खुला मैदान है. इसे सरकार अपने संरक्षण में क्यों नहीं लेती.'

'सरकार तो चाहकर भी नहीं कर सकती. फिर वोट का मामला है. तुम नहीं समझोगे. फिर इससे तुम्हें क्या मतलब, तुम चाहो तो विदेश में जाकर बस सकते हो.'

'नहीं रे. यहीं तेरे इसी शहर में फ्लैट ख़रीदकर रहने का इरादा है. फिर तेरी शादी करनी है. मां-बाप तो नहीं रहे, तू भी क्या मेरी तरह कुंवारा रहेगा ? हमारी रगों में भारत की मिट्टी बैठी है. विदेश-उदेश ख़ूब झेल लिया.'

मिहिर, भैया की इस बात पर अवाक है. भैया के पास किस बात की कमी है ? विदेश में चाहें तो आरामयाफ़्ता होकर रह ही सकते हैं. लाखों का वारा-न्यारा करने की कूवत है.

'तो भैया, इसी शहर के पॉश इलाके में जाकर रहो न. वहां तो इस तरह की गंदगी नहीं देख पाओगे. और भारत में रहने की साध भी पूरी होगी.'

'हां, यह शहर इतना डेवलप कर रहा है. धूल-धूसर वाली जगह भी अब ख़ूबसूरत पार्क और फ़व्वारे से सज-धजकर लोगों को लुभा रही है. और एक यह जगह है - ग़रीबों की बस्ती.' समीर ने कहा.

'मगर भैया, ये लोग इसी में ख़ुश हैं. इनका स्वर्ग यहीं है. यह अगर दूसरी जगहों जैसी बन जायेगी तो इनके बच्चे कहां खेलेंगे. सुबह से शाम तक युवा-बूढ़े-बच्चे यहीं जमे रहते हैं. इनके घरों में इतनी जगह नहीं बचती कि वे एक साथ उसमें समा सकें.' मिहिर ने ऐसे कहा जैसे वह इनके घरों में जाकर देख आया हो.

'तू तो ऐसी वकालत कर रहा है इनकी, जैसे इस पार्क से तेरा भी लगाव हो गया है.'

'ऐसा ही समझ लो भैया. जब गर्मी की रातों में ये पड़ोसी लोग इसी पार्क के खुली ज़मीन पर चटाई बिछाकर सोते रहते हैं, तो देखकर मन को अजीब सुकून मिलता है.'

'वाह, वाह, क्या बात है. तो कहना चाहते हो कि ये ग़रीब-गुरबे तुम्हारी ही बिरादरी के हैं, याने इस ग़रीब देश के हैं.' समीर ने व्यंग किया.

मिहिर बहुत देर तक जहाज़ी भैया समीर का मुंह ताकता रहा. अगर भैया को कहे तो इस पार्क को ख़रीदने के लिए मुंह-मांगा दाम दे सकता है !

❑

सिद्धेश

लेखन : *कथा क्षेत्र में चालीस सालों से निरंतर सक्रिय. ६७ साल के अब भी युवक कथाकार सिद्धेश के अब तक दस कथा-संग्रह, एक कविता संग्रह एवं दो लघु उपन्यास निकल चुके हैं. जिनमें एक प्रकाशित कथा-संग्रह 'गंगु आज़ाद' व 'सफ़र बावजूद' (किताब घर) की चर्चा बाकी है. २००५ में 'कमरा खाली' और 'विदूषक नं. दो' प्रकाशनाधीन हैं.*

विशेष : *बांग्ला से उपन्यास व कविता संग्रह का हिंदी में अनुवाद किया है, तथा हिंदी तथा भारतीय भाषाओं की कहानियों का बांग्ला में संकलन व संपादन भी किया है.*

बांग्ला एवं हिंदी के बीच सेतु के निर्माण हेतु 'अपनी भाषा' संस्था द्वारा सम्मानित हैं.

संप्रति : *स्वतंत्र लेखन.*

जाड़े के दिनों में रात को पार्क एकदम से सुनसान हो जाता है. पार्क के एक किनारे गैसलाइट थी, जो पूरी जगह को रोशनी दे रही थी.

दो बंदूकधारी कांस्टेबल फिर से पार्क में आ गये थे. उनके साथ दो-तीन और भी लोग थे, जो आपस में बात कर रहे थे. समीर ने देखा, वे सभी सामने बंद एक कमरे की तरफ़ बढ़े. उस कमरे के सामने चालीस वाट का एक छोटा-सा बल्ब लटक रहा था. उस धुंधली रोशनी में कमरे के ऊपर लिखे अक्षरों को पढ़ने की उसने कोशिश की, मगर दूर से कुछ सूझ नहीं पड़ा. समीर कमरे के अंदर आ गया.

सुबह होने पर मिहिर ऑफिस जाने की तैयारी में था कि समीर ने उसे रोकते हुए कहा, 'आज न जाओ तो ठीक है.'

'क्यो ? कहीं चलने का इरादा है ?'

'चलो, आज चलते हैं शहर घूमने. कोई अच्छी-सी जगह किसी इलाके में चलकर ढूंढते हैं. जहां रहने लायक फ्लैट लिये जा सकते हैं.'

'नहीं, आज रहने दो. कुछ ज़रूरी काम आ गया है.'

'ठीक है, यह तो बताओ कि पार्क के किनारे बने उस बंद कमरे में क्या है ? कल रात में कुछ लोग कांस्टेबल के साथ उस ओर गये थे. समझ में नहीं आया.'

'वह तो भैया सोसायटी वालों का कमरा है. यह पचास साल पुराना है. लेकिन वह अब बंद कर दिया गया है. पुलिस वालों ने ताला लगा रखा है.'

'कैसी सोसायटी ?'

'गरीब लोगों के लिए थी. वहां से पार्क में होने वाले फंक्शन का नियंत्रण होता था. खेल हो या दशहरा पूजा. इससे जुड़े लोग गरीबों के मकसद, उनके मनोरंजन का ध्यान रखते थे.'

'फिर ?'

'धीरे-धीरे वह एंटी सोशल लोगों के कब्जे में आ गया है. वहां से रात के साये में राजनीतिक दांव-पेच के तहत ख़ून-ख़राबे की साज़िश होती थी. इसलिए यहां के मातहत लोगों ने हमेशा के लिए ताला ठोंक दिया है. इस पर कोर्ट में केस चलने की बात है. पता नहीं, क्या हो !'

समीर ने कल रात अपनी नज़रों के आगे जो दृश्य देखा था, उससे मिहिर की बात की पुष्टि हो रही थी. समीर को लगता है, बस्ती में बसने वाले अधिकतर बाशिंदे इसके शिकार हैं - चाहे या न चाहे इनको तो इन सबों के बीच ही रहना है. समीर को बाल्कनी से इस सोसायटी वाले कमरे के ऊपर लिखे हुए नाम का पता नहीं चलता है. उसने कई बार दायें-बायें हिल-डुल कर नाम पढ़ना चाहा, पर दिन में सोसायटी के नाम का एक शब्द दिखाई पड़ गया और वह था 'भारत', इसके आगे सब ओझल था. सामने एक वट का विशाल वृक्ष अपने पूरे वजूद के साथ खड़ा था. उसकी छितराई डालियों और हरे-भरे पत्तों से बाक़ी के अक्षर ढंक गये थे.

उसने चाहा कि मिहिर से पूछे कि गरीबों की इस सोसायटी से 'भारत' का क्या संबंध है ? मगर वह भारत के बाहर रहकर इतनी तमीज़ तो सीख ही गया था कि इस देश में ग़रीबी से जीते हुए लोगों का मज़ाक न उड़ाये !

समीर ने एक बार इतना ही पूछा था, 'मिहिर, तुम तो इनके ही आस-पास रहते हो, कोई दिक्कत नहीं होती ?'

'दिक़्क़त किस बात की भैया, ये हमसे कुछ मांगने थोड़े आते हैं ? ये अपनी राह चलते हैं, मैं अपनी. दुआ-सलाम भर से काम चल जाता है. कभी-कभी इन लोगों में से किसी-किसी को पकड़ लिये जाने की ख़बर सामने आती है.'

'आख़िर ये लोग करते क्या हैं, जो गाहे-बगाहे पकड़ लिये जाते हैं.'

'ग़रीबी जो न कराये. पैसों के लोभ में असामाजिक कामों में लिप्त रहते हैं.' मिहिर ने सुनी-सुनाई बात दोहरा दी.

समीर को लगता है, ऐसे लोग तो हर तबके से जुड़े होते

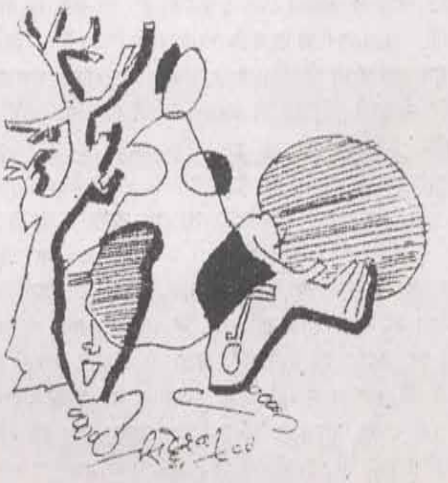

हैं. बड़े लोग इनको मुद्दा बनाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं. इसमें नया क्या है ? भोगना इन्हें पड़ता है. इनके बच्चे इसी ग़लीज़ माहौल में बड़े हो रहे हैं, बड़े होकर अपने बाप-भाइयों का नाम भी रौशन करेंगे भला ! इनकी तालीम सही वक़्त पर इसी तरह दी जायेगी. बहरहाल, वह चूंकि भारत में आकर बसना चाहता है, इसलिए इनके प्रति थोड़ी हमदर्दी है, अन्यथा उसे क्या लेना-देना इन सब बातों से.

समीर तनकर बैठ गया. मिहिर को ऑफ़िस जाने के लिए तैयार होते देख रहा था. उसने इतना कहा, 'ठीक है, आज तुम ऑफ़िस हो आओ, कल के लिए छुट्टी ले लेना. मेरी छुट्टी भी ख़त्म हो रही है. इसके पहले तुम्हारे साथ चलकर फ्लैट-उलैट देख लूंगा.'

❑

उस दिन सुबह टहलते हुए उस मकान की तरफ़ गया तो नाम पढ़कर भौंचक रह गया. यह नाम क्या सोचकर दिया गया था ? पचास-पचपन साल से स्थापित यह सोसायटी जिस उद्देश्य से बनायी गयी थी, उसकी प्रासंगिकता अब रह नहीं गयी है. अब तो चोर-उचक्कों के कब्ज़े में है. आज बड़ी-बड़ी संस्थाएं बड़े लोगों की भेंट चढ़ गयी हैं. समीर जो भारत की मिट्टी से उखड़ चुका है, जहाज़ पर अपनी ज़िंदगी बसर कर रहा है, वह इन बातों से बेख़बर नहीं है, मगर पूरी तरह से वाक़िफ़ भी नहीं है.

समीर का शहर में मिहिर के साथ जाना संभव नहीं हो पाया. एक दिन वह ख़ुद शहर के पॉश इलाकों में घूम आया, मगर कहीं भी उसे सुकून नहीं मिला. कहने के लिए हर जगह मल्टी स्टोरीड बिल्डिंगें खड़ी हो रही हैं, कंक्रीट में तब्दील यह शहर आधुनिकतम कारीगरी के नमूने पेश कर रहा है, लेकिन घुटन ज्यादा है. शहर के बीचों बीच कई पार्क सजाये-संवारे जा रहे हैं, उन्हें बड़ी-बड़ी बिल्डिंगों में रहनेवाले धनाढ्य परिवारों के लिए हवाख़ोरी और स्वास्थ्य-लाभ का ज़रिया बना दिया गया है. मकान

में बैठे लोगों के सामने ऐसा कुछ नहीं है, जो मन-तन को सुकून दे सके. जो आस-पास के पार्क अथवा खुले मैदान हैं, सबकी हालत लगभग एक जैसी है. मिहिर के क्वार्टर के सामने इस पार्क को समीर ने दूसरे नज़रिए से देखा तो उसे लगा कि कम से कम मानवीय सरोकारों से जुड़े इन ग़रीब तबक़ों के लोग एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल तो हैं. समीर ने अपना फैसला सुना दिया कि यहीं इस इलाके में कोई अच्छा-सा मकान देख ले.

समीर की छुट्टियां ख़त्म हो गयी थीं. कल वह जहाज़ पर होगा. वह मकान ख़रीदने की बात मिहिर के ज़िम्मे लगाकर निश्चिंत हो गया. आज की रात वह यहीं है, कल से समुद्र की छाती पर जहाज़ की दुनिया में जज़्ब हो जायेगा. धरती से नाता जोड़ने की कल्पना में महीनों का अलगाव वह बर्दाश्त कर लेगा. वह मिहिर के मकान के बरामदे में आकर खड़ा हो गया. तब रात बीत रही थी. उसने घड़ी की ओर देखा, लगभग बारह बज रहे थे. सामने खुले पार्क में लैंप पोस्ट की रोशनी मद्धिम थी, अतः साफ़ कुछ दिखाई नहीं पड़ा. कुछ छायाएं गेट के भीतर डोलती नज़र आयीं तो समीर चौकन्ना हो गया. उनके लैंप पोस्ट के नीचे आने पर पता चला कि दो-तीन उचक्के टाइप के लोग थे, जो सोसायटी वाले कमरे की तरफ़ बढ़ रहे थे. जब दो बंदूकधारी कांस्टेबल को भी उसी ओर बढ़ते देखा, तो वे तीनों ग़ायब हो गये थे या छिप गये थे. समीर सकते में आ गया. फिर सब सन्नाटा था. कहीं कोई नज़र नहीं आया. जाड़े की रात सभी अपने-अपने कमरों में दुबके होंगे. कुछ देर तक खड़ा रहने के बाद समीर भी कमरे के अंदर आ गया.

समीर सोचता है, इस पार्क के इर्द-गिर्द होने वाले सारे फ़साद की जड़ ग़रीबी है. हठात् उसकी ताज़ा नींद एक ज़ोर के धमाके से उखड़ गयी. वह तनकर उठ बैठा. इसके बाद दूसरा धमाका. कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा. फिर तीन-चार बार बंदूक चलने की आवाज़ आयी. पार्क जो कुछ देर पहले तक सुनसान पड़ा था, लोगों से भर गया. भाग-दौड़ मच गयी थी. बच्चे जवान बूढ़े बाहर निकल आये थे. इस हादसे के बाद पता चला कि दोनों बंदूकधारी कांस्टेबल ज़ख़्मी हो गये हैं. उन्हें हस्पताल भेज दिया गया था. एक व्यक्ति मारा गया था. वह इस इलाके का समाजविरोधी था. वही सामने वाली सोसायटी का रखवाला भी था, जिसने अंदर कमरे का ग़ैरकानूनी तौर पर इस्तेमाल किया था. सारे इलाके में दहशत फैल गयी थी. लोगों की ज़ुबान पर पचास साल से भी पुरानी इस सोसायटी का नाम घूम रहा था. सुबह उठकर समीर ने देखा कि ताला बंद कमरा आज खोल दिया गया था और उसके नाम के हरफ़ों को मिटाया जा रहा था - 'भारत पूअर सोसायटी'.

श्रीपुर, पो. मध्यमग्राम बाज़ार,
कोलकाता - ७०० १३०.

लघुकथा

खोज

✍ डॉ. सी. भास्कर राव

वह एक सिद्ध योगी बनना चाहता था. सांसारिक मोहमाया के लोभ-लाभ से स्वयं को मुक्त कर लेने को व्याकुल था. वह वीतरागी हो रहा था. उसे लगा, अब जीवन की जटिलताओं, उलझनों, बंधनों और बाधाओं के पार निकलना ही, मोक्ष की ओर एक सार्थक प्रयाण हो सकता है और वह ईश्वर की खोज में निकल पड़ा. वह हर जगह ईश्वर को ढूंढ़ता रहा. प्रकृति के नाना रूपों में, जीवन के नाना रंगों में, मंदिर-मस्जिद, गुरुद्वारा-चर्च में, साधुओं की टोली में, भक्तों के भजनों में. वह इन सब में रम तो जाता था और कुछ समय के लिए उसे यह लगता भी था कि वह मुक्ति के पथ पर अग्रसर है, खोज की दिशा सही है, ईश्वर का साक्षात्कार होगा, पर अंततः पाता कि जहां से वह चला था, वहीं स्थित है. आगे बढ़ना एक भ्रम ही प्रमाणित होता. पुनः वही अवसाद, शून्यता और व्यर्थता का बोध, विफलता की पीड़ा. फिर वह अपनी दिशा बदल देता, क्षेत्र बदल देता, रास्ता बदल लेता, पर अंत में उसके हाथ कुछ नहीं आता. न उसकी खोज पूरी हुई और न ही उसे ईश्वर के दर्शन हुए. वह समझ गया कि कुल मिलाकर उसकी यह यात्रा एक मृगतृष्णा ही है. वह हताश और निराशा के चरम पर पहुंच चुका था. जीने की कोई इच्छा उसमें शेष नहीं रह गयी थी. उसने मान लिया कि उसके जीवित रहते यह संभव नहीं है, इसलिए उसने मृत्यु का वरण करने का संकल्प लिया. अब वह मृत्यु की ओर चल पड़ा. वह कोई आसान मृत्यु नहीं चाहता था. किसी ऐसी मृत्यु की इच्छा थी कि उससे ईश्वर भी द्रवित हो उठे और भले ही मृत्यु के बाद, उसे ईश्वर की प्राप्ति हो जाये. ईश्वर तक पहुंचना ही उसका परम लक्ष्य था. वह कई दिनों तक भूखा-प्यासा भटकता रहा. एक बियावान में, किसी घनी झाड़ी के समीप वह रुका. वहां एक भारी पत्थर पड़ा था. उसने तय किया कि उसी पत्थर से सिर पटक-पटक कर वह अपनी जान देगा, पर तभी अचानक झाड़ी के भीतर किसी नवजात शिशु के रोने का स्वर सुनाई पड़ा, जो लगातार तीव्र होता जा रहा था. उसका वह रुदन उस विराने में दूर-दूर तक गूंज रहा था. जैसे वह किसी को पुकार रहा हो. अपनी मृत्यु की बात भूल, वह झाड़ी के भीतर जा कर उस नवजात को उठा लाया. उसकी गोद पाकर वह शिशु चुप हो गया. उसे सहसा एक दिव्य अनुभूति हुई और उस बच्चे को अपनी छाती से लगाये वह लौटने लगा, कुछ इस अनुभव के साथ कि उसकी खोज वास्तव में आज अभी पूरी हुई.

एयरबेस कॉलोनी, कदमा,
जमशेदपुर (झारखंड) ८३१००५

कहानी

हेलीकॉप्टर

'अ रे सुगिया के माई ! सुनत बाड़िस रे ! अरे हई का ह रे ? तनी बहरी आ के देख बिस ? अरे....बाप रे बाप... ई त बड़का राक्षसे असमनवा से उतरत बा रे..... अरे दऊड़िहासन रे.... अरे लईकन ? हई देखा सन.... एकगो दहाज़ आवत बा हमनी देने....." किसना अपनी उम्र के लिहाज़ से कुछ अधिक ही तीव्र स्वर में चीख़ रहा था और लोग-बाग गांव से निकलकर स्कूलिया मैदान की ओर दौड़ पड़े थे. किसी अनहोनी के डर से कुछ उम्रदराज़ लोगों ने हाथों में लाठियां ले ली थीं और नंग-धड़ंग ही क़स्बे से बाहर बने स्कूल के खुले मैदान की ओर दौड़ते जा रहे थे.

उन में दो-चार लोग ही ऐसे थे, जिन्होंने नज़दीक से जहाज़ को उड़ते हुए देखा था. वह भी तब जबकि वह किसी काम से शहर गये थे. जहाज़ आईल....जहाज़ उतरल....की रट लगाते हुए गंवई लोग एकजुट होने लगे थे मैदान में.

परेश बाबू वहां उपस्थित अनियंत्रित होती भीड़ को तितर-बितर करने का भरसक प्रयास कर रहे थे जो माध्यमिक उच्च विद्यालय के पुराने शिक्षक थे. अपने दायित्व से बख़ूबी परिचित थे. 'देखने के लिए तनिक दूर खड़े रहें आप लोग. यह कोई जहाज़ नहीं है शनिचर चाचा...यह हेलीकॉप्टर है...हेलीकॉप्टर...जहाज़ में ऊपर की ओर पंख नहीं नाचते. उसमें अगल बगल पंखे होते हैं और वह भी छिपे रहते हैं...ओ रामू. तू सुनता क्यों नहीं... अरे पंखे से टकरायेगा क्या... चल ज़रा दूर हट जा... यह इसी मैदान पर उतरेगा, फिर डी. एम. साहब की अगुवाई में नेताजी गांव में जायेंगे...सब लोगों से मिलेंगे ? कुशलक्षेम पूछेंगे...सब के घर-द्वार से गुज़रेंगे, फिर काहे उपदर मचा रहे हो भाई ?' परेश बाबू ज़रा झल्लाये. जिसने उनकी बात सुनी दो क़दम पीछे हट गया, जिसने ध्यान नहीं दिया. वह धरती पर खिंची रेखा से आगे बढ़ गया. तब-तक अर्द्ध सैनिक बल भी पहुंच गया. उनके साथ लड़ाके कमांडो जवान भी थे जो काले कपड़ों में कुछ अधिक ही जांबाज़ दिख रहे थे. उनके पीछे सरकारी अफ़सरान की टोली थी. छुटभईये नेता भी आ गये थे. उनके हाथों में अनेक फूल मालाएं थीं... जो अपने नेता जी को पहनाने के लिए उतावले दिखे. वे अपनों को ही धकियाते हुए आगे बढ़े तो पुलिस दस्ते ने अधिकारियों के इशारे पर रोका. वे सकपकाये, फिर टेढ़ी दृष्टि से देखा, जैसे कच्चा ही चबा जायेंगे. उनके तेवर में नरमी नहीं दिखी नेता जी ठिठक गये. वहां उपस्थित लोगों के बीच शोर शराबा होता रहा.

अचानक तेज गड़गड़ाहट के साथ हेलीकॉप्टर निर्धारित स्थान पर उतरने के लिए नीचे आया...जनता अपलक सब देखती रही और नेता लोग जय जयकार करते रहे.

उनके साथ पार्टी के प्रमुख नेता जी न जाने किस कार में बैठे. यह कम लोगों ने ही देखा. दूर-दराज़ देहातों में रहने वाले लोग पहली बार अपनी खुली आंखों से एक जहाज़ को इतने समीप से देख रहे थे. उसे अपलक निहार रहे थे जैसे किसी नयी नवेली दुल्हन को घूरती दादी-नानी की आंखें. कुछ वैसे ही सपने थे गांव वालों की आंखों में. जो एक कुंवारी लड़की देखा करती है, जो बता नहीं सकती. कैसा लग रहा होता है उसे ? वो एक पल, जिससे दामन छुड़ाये तो कैसे ? किसना की स्थिति भी विचित्र थी. उसकी उम्र सत्तर से ऊपर हो आयी थी. देश दुनिया क्या होता है. उसने अपने गांव के सिवा कुछ नहीं देखा सुना. बस अपने परिवार, गांव, घर और खेत बघार में रमा रहा...वह बुढ़वा हो गया...बुढ़िया मर गयी...उसके बेटे के बच्चे बड़े हो गये. एक आध पोते के बच्चे भी सजीले जवान दिखने लगे, पर उसने न तो शहर देखा... न रेल ... न सिनेमा...न कोई शहरी खेल..जहाज़ तो बस आसमान में ही दिखा...कई बार बहुत ऊंचाई पर सुपर सॉनिक विमान गहरा धुंआ छोड़ते सांप की तरह रेंगते हुए दिख जाते. किसना गदगद होता. उसने अपनी आंखों से जहाज़ देख लिया और कितनों को दिखाया भी.

तारिक अस्लम 'तस्नीम'

धीरे-धीरे भीड़ छंटने लगी. अब उस स्थान पर कुछ लोग ही शेष बचे थे. अधिकतर लोग बड़े नेता जी के पीछे-पीछे चल पड़े थे. किसना के मुंह से बरबस निकला "जाय द गदह जन्म छूट गईल हमार. नेता ज़ी गांव खातिर कुछ कईलन चाहे न. ई हां जहजवा से अईलन त सही...ई त बुझाई...ई गांव में न कोई सड़क बा... ना बिजली...न सिंचाई के साधन." "क्या सोच रहे किसना भाई ?" परेश बाबू ने पूछ दिया. उन्होंने फिर अपनी बात दुहरायी. वह हंस पड़े. "किसना भाई. अब तो हमारे मरने का समय आया, जितने दिन यह तमाशा और देख लें ? ई नेता जी अपने पार्टी के प्रत्याशी के बुलावे पर आये हैं और सबसे वोट मांगते फिर रहे हैं...उन्होंने या उनकी पार्टी ने इतने सालों में हमें क्या दिया ? यह कहीं नहीं दिख रहा उनको...जिला मुख्यालय

से गांव पहुंचने में सुबह से शाम होती है... सड़क पर एक ईंट नहीं, खेत सड़क सब बराबर. कहना कठिन है यह कोई सड़क है या खेत. जीना मरना तो हमको है न किसना भाई ? वे तो चुनाव जीते, लाल बत्ती - पीला बत्ती वाली गाड़ी मिल गयी.... बीमार पड़े तो अमेरिका गये... मौज मस्ती करना हुआ तो सिंगापुर... अरब देश से शेख़ अयाशी करने यहां आते हैं तो भला यह क्यों न कहीं और जायें ? अब आप माथा ठोंकते रहिए. सोचते रहिए ? किसके कहने पर वोट दे दिया ? कभी जात तो कभी क्षेत्र के नाम पर ठगे गये. है न भाई ?"

"अब का कहें मास्टर जी. सुना है विधायक जी को उनके मद में एक करोड़ मिलता है और सांसद जी को दो करोड़, फिर भी न तो सड़क बनती है और न ही बिजली आती दिखाई पड़ती है ? आखिर ई पईसवा जाता कहां है मास्टर जी ?" एकदम आश्चर्य से भर कर पूछता है किसना.

"ई विकास का खेला भी बड़ा ग़ज़ब का है किसना भाई. बात ई है कि हमारे क्षेत्र के सांसद और विधायक दोनों ही केंद्र और राज्य सरकार के मंत्री हैं और विकास राशि के करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष व्यय कर रहे हैं. फिर इस पंचायत में कोई विकास कार्य क्यों संपन्न नहीं होता. यह मेरी समझ से बाहर है. यों भी मैं तो अभी कुछ दिनों पहले ही यहां बहाल हुआ हूं." परेश बाबू ने आश्चर्य व्यक्त किया.

किसना की बुझती सी आंखों में एकबारगी हल्की सी चमक उभरी, जैसे बादलों की ओट से चांद दिखा हो. उसने अपने झुर्रियों से भरे चेहरे पर कांपती सी अंगुलियां फेरीं. एक हाथ पर सिर टिकाया और धरती पर बैठ गया. किसना को देर तक खड़े रहने में परेशानी होती थी और पैर जवाब देने लगते. वह लाठी के सहारे धीरे-धीरे कहीं भी बैठ जाता. दो-चार पल गहरी चुप्पी के बाद बोला, "हमारी पंचायत के किसी गांव में पिछले बीस सालों से किसी सरकारी योजना को लागू नहीं किया गया. हमने बहुत हाथ-पांव मारे, फिर भी कुछ नहीं हुआ. जाने क्यों ? इस पंचायत के लोगों ने संसदीय हो या विधान सभा चुनाव, हमेशा 'माले' के प्रत्याशी को वोट देकर जिताया, 'माले' के लोगों ने गांव वालों के लिए स्कूल खोला. बच्चों और बूढ़ों को पढ़ने को कहा, उनको बड़े खेतिहरों से पूरी मजूरी देने को कहा तो सेठ साहूकारों ने बंदूकें तान दीं. फिर भी हम लोग आधे पेट खाकर उनके खेतों में बैलों की तरह खटते रहे. उनके घर-बार अनाजों और पैसों से भरते रहे और हम दो जून रोटी के लिए तरसते रहे..." किसना तनिक रुका, फिर शुरू हो गया, जैसे कोई बात याद आ गयी हो. "मास्टर जी, पिछले विधान सभा चुनाव में तो गुंडों ने हद कर दी... उनके प्रत्याशी के पक्ष में वोट फिर नहीं पड़ा तो वे बौखला गये. पूरे गांव के गरीबों को लूटा-पीटा. धनेसर और परमात्मा राम को घर से घसीटते हुए बाहर निकालकर गोली मार दी. उनकी औरतों ने

३ अप्रैल १९६२, धनगाई, (विक्रमगंज, रोहतास)

लेखन : सन १९७५ में पहली बाल कहानी मासिक 'बालक' प्रकाशित. अब तक देश की विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित.

प्रसारण : आकाशवाणी पटना से १९७५-१९८५ तक उर्दू हिंदी कार्यक्रमों में कहानियों का नियमित प्रसारण.

प्रकाशन : 'आदमीनामा', बिहार के लघुकथाकारों का प्रथम संकलन-१९८५, 'सिर उठाते तिनके,' एकल लघुकथा संग्रह-२०००, 'शब्द इतिहास नहीं रचते', एकल काव्य संग्रह-२००३, 'पत्थर हुए लोग' (कहानी संग्रह) शीघ्र प्रकाश्य, 'प्रतिनिधि लघुकथाएं' (लघुकथा-संकलन) शीघ्र प्रकाश्य.

अनुवाद : पंजाबी, मगही, भोजपुरी, बंगला, गुजराती, मराठी में रचनाएं अनूदित.

सम्मान : अखिल भारतीय लघुकथा मंच सम्मान (पटना-१९९६), दुष्यंत कुमार स्मृति सम्मान (गाज़ियाबाद-२०००), परमेश्वर गोयल साहित्य सम्मान (बरेली-२०००), मोहसिन काकोरवी स्मृति सम्मान (मैनपुरी, इटावा-२०००), पांडुलिपि प्रकाशन अनुदान, राजभाषा विभाग, बिहार सरकार द्वारा वर्ष २००१-२००२ में प्रदत्त.

विशेष : लेखनी प्रकाशन, भारतीय साहित्य सृजन संस्थान, संजीवनी हेल्थ केयर क्लीनिक की स्थापना.

संप्रति : अनुवादक/राजभाषा विभाग, बिहार सरकार.

विरोध स्वरूप गालियां देनी शुरू कीं. उन लोगों ने उनकी विधवाओं को पकड़ लिया और सबके सामने दुष्कर्म किया... कई बहू-बेटियां तो आज तक घर नहीं लौटीं"... और वह फफक कर रोने चला. उसे रोता देखकर कुछ लोग जमा हो गये. परेश बाबू चुप ही रहे. वह क्या कहते. उनकी नसों में भी गर्म ख़ून दौड़ रहा था, परंतु वे कर क्या सकते थे. 'माले' के द्वारा खोले गये स्कूल को सरकार ने मान्यता प्रदान की. उनकी नियुक्ति यहां कर दी गयी.

अचानक परेश बाबू यह देखकर चौंक गये. कुछ लठैतनुमा छोकरे दूर खड़े उनकी ओर इशारेबाज़ी करते हुए कुछ बतिया रहे थे. एक अपनी बाहें चढ़ा रहा था. वह दो क़दम आगे बढ़ा भी एक ने उसकी बांह थाम ली. वह मुंह फेरकर गालियां देता रहा जो वह साफ़ सुन रहे थे. यह अनुभव कर वहां मौजूद लोग धीरे से खिसक गये. किसना गुमसुम बैठ ही रहा. उन्होंने उसे सहारा देकर उठाया. दोनों अपनी दिशा में चल पड़े. किसना ने यह कहते हुए उन्हें चौंका दिया, "माले के लोग भी हमको तो मोहरा ही बना रहे हैं बाबू. जब हम पे कोई आफ़त आती है तो चले आते हैं हमारे आंसू पोंछने. वरना वह भी दिल्ली में ऐशो आराम ही करते हैं. उनके बच्चे विदेशों में पढ़ने जाते हैं और हमारे बच्चे गांव से बाहर निकलें, तो रास्ता बंद दिखाई पड़ता है. अब किससे शिकायत करें...सब लोग तो यही कह रहे हैं कि 'माले' के विधायक जी को जो विकास राशि मिलती है वह कहां व्यय होती है ?"

"उस राशि के व्यय होने के अनेक रास्ते हैं...यह जो लोग पीछे-पीछे घूम रहे हैं और अपने प्रत्याशी से मुंह और मोबाईल से पूछते नहीं थक रहे हैं कि अब किधर चलना है ? किस गांव में, किससे मिलना है और किसको घेरना है ? इनको तो रोज़गार ही मिल गया समझो. कुछ दिन झोला ढोयेंगे...फिर चुनाव जीतने पर हथियार उठा लेंगे और नेताजी के अंगरक्षक बन जायेंगे... अख़बार में तो रोज़ ही ऐसे नेताओं के फोटो छपते हैं जो अपने आसपास हथियारों से बस एक फ़ौज सी खड़ी रखते हैं. बाबा. मुझे कई बार यह समझना कठिन लगता है. हम लोग प्रजातंत्र भोग रहे या राजतंत्र ? जिन लोगों को जनता की रक्षा की जवाबदेही लेनी चाहिए वे स्वयं अलग-अलग श्रेणी के सुरक्षा कवच जुटाने में लगे हैं."

"बाबू साहेब. ई देशवा शिव जी के त्रिशूल पर टिका है....बस खिंच रही है गाड़ी किसी प्रकार...हम तो यही सोचत हैं कि हमारे नेतवन से बड़ा आतंकवादी कौन है ? ई लोग चाल-रहन सुधार लें या भगवान सुधारे के कोई एक उपाय करें, तब ही कुछ बदलाव आयेगा नहीं तो...अब देखिए...इ जिलवा में कौन अईसन दिन था कि कहीं गाड़ी छिनतई न होत रहे...दु-चार गो मर्डर होना भी आम बात रहे...कहीं बनिया...कहीं सोनार...कहीं भट्टा मालिक के अपहरण. यह सब सुन तो रहे हैं ! दस दिन से क्षेत्र में क्या नहीं हो रहा है ? पता नहीं ई कईसन कलक्टर हैं और एस पी साहेब भी ने कुछ अईसा किया है कि अपराधी भागे फिर रहे हैं ? का ई सब सच है मास्टर जी ? हम तो अख़बार पढ़ते नहीं बस सुना है किसी से ?"

आपने ठीक सुना है बाबा. मंत्री जी भी कलक्टर साहेब से भेंट कर, अपना रुतबा जताने गये थे तो द्वार से ही धकिया दिया और बोल दिये, हमको किसी नेता वेता से नहीं मिलना है ... जाइए जनता से मिलिए ...यहां आने की आवश्यकता नहीं

और एक प्रत्याशी एस पी साहेब से अपनी सुरक्षा की मांग लेकर गया तो उनका जवाब था कि मेरी जवाबदेही जनता को सुरक्षा प्रदान करना है, न कि गुंडे-बदमाशों को ? आप अपनी रक्षा स्वयं कीजिए..वह भी सुना है... मुंह लटकाये लौट आये. ऐसे लोगों की देश में कहीं कोई कमी नहीं है बाबा. आज भी देश में चंद्रशेखर आज़ाद और भगत सिंह मौजूद हैं, उनको एक बार अंग्रेजों ने गोली मार दी या फांसी दे दी. पर मुझे तो लगता है कि ऐसे लोग रोज़ ही जेल में बंद किये जा रहे हैं. जो अधिकारी ईमानदारी, निष्पक्षता, कर्तव्यनिष्ठा और औचित्य की बात करता है. उसको किसी शंटिंग पोस्ट पर बैठा दिया जाता है. वे वेतन पाते रहते हैं, पर अपनी सोच और समझ से कोई निर्णायक भूमिका नहीं निभा पाते. हमारे नेताओं को ऐसे अधिकारी कोबरा और अज़गर दिखाई पड़ते हैं. उनको सरकारी सेवा में रहते हुए भुला सा दिया जाता है... ऐसे कई लोगों से मैं भी परिचित हूं, जो बड़े ओहदे पर होते हुए गुमनामी की ज़िंदगी जी रहे हैं...पर जनता तो इनके कठोर निर्णयों और आनन-फ़ानन में लिये गये निर्णयों से काफ़ी संतुष्ट और प्रसन्न दिख रही है..."

"मास्टर जी ! ऐसे लोगों को टिकने दें तब न.? यहां कुछ बदलेगा ? सबकी आंख लगी होगी, कब ऐसी स्थिति बने. उनको फिर पिंजरे में बंद किया जाये... पर मास्टर जी पिंजरे में भी शेर तो शेर ही न रहेगा ? वह गीदड़ तो नहीं बन जायेगा ?" तब मास्टर जी ने कहा - हां ! बाबा सो तो ठीक कहा आपने. अब देख लीजिए...कितने खूंखार बदमाशों को जिला बदर तो किया ही..ये छुटभइये नेताओं के मनचले चेले चपाटे भी न जाने

किस बिल में दुबक गये हैं...इस बार जिला मुख्यालय जाने के लिए एक टेंपो पर बैठ तो जानते हो बाबा ड्राइवर ने मुझसे क्या पूछा, साहब जी राष्ट्रपति शासन लागू हो गया न ? कहीं रुक तो नहीं जायेगा ? किसी को बहुमत नहीं मिला तो...?"

"क्यों ? तुमको इससे क्या फ़र्क़ पड़ेगा ? नेतागिरी करनी है क्या ?"

नहीं सर, अभी सब कुछ बढ़िया चल रहा है. वह खुश दिखा.

"पर तुमको क्या परेशानी थी ? तुम तो जो हो, वही रहोगे न ?"

"यह तो ठीक है सर, पर पहले कभी शिविर लगाकर वाहनों का लाइसेंस नहीं बनते हुए सुना था... जब भी बनवाने गया तो हज़ार-बारह सौ मांगते थे लोग, पर अभी तो सिर्फ़ डेढ़ सौ रुपये में ही बन गया, हुआ चमत्कार सर ? ट्रैफिक पुलिस हो या स्टैंड मालिक सबको दस-दस रुपये देना पड़ता था...रंगदारी टैक्स अलग से...लुच्चे-लफंगे गाड़ी में बैठ गये तो पेट पर लात पड़ती थी...अभी तो सब बंद है न ?"

"उसके इस प्रश्न का कोई तर्कसंगत उत्तर मेरे पास नहीं था, फिर भी मैंने उसकी ख़ुशी बक़रार रखने के लिए कहा, "तुम बिल्कुल निश्चिंत रहो, सरकार नहीं बन रही, एक-दो दिन में राष्ट्रपति शासन की घोषणा हो जायेगी, तब तो ठीक रहेगा साहब, हम लोग चैन से गाड़ी चलायेंगे...दस पैसे कमायेंगे...ससुरे कुत्ते की माफ़िक हमारे पीछे पड़े रहते हैं, अब जाकर स्टैंड में देखिए किसी का कोई अता पता नहीं है, कहां मर गये सब ? ऐसे अफ़सर हमेशा यहां रहें तो साहब जी जनता चैन की नींद सोयेगी... नहीं तो आप भी जानते हैं ? यहां प्रशासन के नाम पर किसका शासन चलता है ?" और एक रहस्यमयी मुस्कान उसके होठों पर थिरक उठी, मैं सोचने लगा, काश ! इसके होठों की मुस्कान यों ही बनी रहे, एक क्षेत्र की जनता को छोड़कर प्रखंड कार्यालय से लेकर जिला कार्यालय तक में पदस्थापित पदाधिकारी सब उनके जाने की प्रार्थनाएं कर रहे हैं... उनको डी एम साब का रौबदार और ग़ुस्सैल चेहरा सपने में दिखने लगा है और वे प्रतिदिन पूजा पाठ के बाद ही घर से कार्यालय के लिए निकल रहे हैं, ताकि डी एम साहब का कोपभाजन नहीं बनना पड़े... "फिर इस पंचायत का विकास भी तय है बाबा ? अभी तो सारी रक़म सांसद और विधायक के लोग फ़र्ज़ी विकास दिखाकर लूटने में लगे हैं, सच तो यही है..."

"भगवान, तुम्हें और बड़े ओहदे पर बिठाये...मैं बेचारा इसके अलावा और कुछ नहीं दे सकता बच्चा." और बाबा स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरने लगे.

लेखनी प्रकाशन, ६/२, हारून नगर कालोनी,
फुलवारी शरीफ़, पटना-८०१ ५०५.

ग़ज़लें

✍ सुधीर कुशवाह

बुज़ुर्गों से मेरा रिश्ता नहीं टूटा,
अभी ये रेशमी धागा नहीं टूटा ।

अनेकों बार टूटी झोपड़ी उसकी,
मग़र वो झोपड़ी वाला वहीं टूटा ।

तुम्हारे साथ तक सब ठीक था लेकिन,
तुम्हारे बाद में क्या क्या नहीं टूटा ।

ग़नीमत है, कि घर सूना पड़ा था और,
अभी तक घर का ये ताला नहीं टूटा ।

ज़रा सा चल के हिम्मत हार बैठे हो,
यहां आंधी में भी बूढ़ा नहीं टूटा ।

गले में आज भी ताबीज लटका है,
यही मां का भरोसा था नहीं टूटा ।

हमारे बाद में कुछ लोग बोलेंगे,
यही इक आदमी साला नहीं टूटा ।

✣ ✣ ✣

मुश्किलों में कौन किसके साथ चलता है,
जो हवन करता है उसका हाथ जलता है ।

क्या समझते हो कि सूरज यूं निकलता है,
ये हमारे वास्ते दिन रात जलता है ।

ठीक से देखा नहीं समझा नहीं जिसने,
बस उसी का फ़ैसला हर वक़्त टलता है ।

यूं चले जाने से इक दुनिया उजड़ती है,
और तुम कहते हो बस चोला बदलता है ।

अब कहानी की तरह ये बात लगती है,
अब कहां किस बात पर पत्थर पिघलता है ।

नींद सपने चैन सुख सब मिट गये मां के,
तब कहीं जाकर ज़रा सा बच्चा पलता है ।

मैं कसम से चाहता हूं तुम भी यूं निकलो,
आसमां पर जिस तरह सूरज निकलता है ।

३१६ - तानसेन नगर,
ग्वालियर (म. प्र.) ४७४ ००२

कहानी

कुछ तो बाकी है!

पूर्ण शर्मा 'पूरण'

'आह ऽ.....' रह-रहकर उसके मुंह से कराह निकल पड़ती. देह तवे-सी तप रह थी. रोम-रोम गर्म सलाख़ों से दाग़ा जा रहा था जैसे. वह बार-बार अपनी आंखों को खोलने का प्रयास करता. पर उसे लगता आंखें नहीं दहकते अंगारे थीं वे... जो खोलने की कोशिश में कुछ और भभक पड़तीं. ऐसा सिर्फ़ फ़िलवक़्त ही नहीं.... पिछले चार रोज़ से जारी था. लाल तपिश भरे गोल-गोल छल्ले उसके भीतर कहीं से उठते और पल भर में अंगारों से दहकने लगते. कुछ ही देर में देह की जगह सिर्फ़ लपटें होतीं. सुर्ख़ और दहकती हुई लपटें. कमरे की छत को भेद कर आसमान को छूती हुई. पर अचानक जैसे बरसात होती और लपटें गायब हो जातीं...., छल्ले भी.

'अब कैसी तबीयत है... अन्नू ?' उसकी बूढ़ी मां पुराने कपड़े का कोई टुकड़ा पानी में भिगोकर उसकी पेशानी पर रखते हुए पूछती. सुनकर उसके पपड़ाये होंठों पर हल्की-सी जुंबिश होती. कुछ कहने की कोशिश में वह अपनी जीभ से होंठों को गीला करने की असफल कोशिश करता. भीगे शब्द मचलते, पर होठों तक आते-आते सूख जाते. एक बेबस सी मुस्कराहट उभर कर रह जाती बस ! मौत की ख़ामोशी से अचानक जीवन उभर आया हो जैसे. पिछले चार रोज़ से यूं ही तो जीता-मरता रहा था वह.

'इस बंद कमरे में घुट-घुट कर मरने से तो बेहतर है खुली सड़क......' खीज और गुस्सा उफ़न पड़ता उसके भीतर. वह उठ बैठना चाहता पर देह में जान न थी जैसे. आंखों से लपकती चिनगारी माथे पर रखे गीले कपड़े से अचानक बह आयी किसी बूंद से जा मिलती और वह बंद दरवाज़े की ओर देखने लगता. चितबगना-सा. दरवाज़े के भीतर वह होता, बूढ़ी मां होती..... पर दरवाज़े के बाहर कुछ भी न होता. जब से कर्फ़्यू लगा था, सब उजड़ गया था जैसे. देर रात तक भी न सोने वाला क़स्बा सांझ उतरते ही चुप था. लंबी टेढ़ी गलियों में मरघटी चुप्पी थी जो कमरे के बंद दरवाज़े से भीतर तक पसर आयी थी. हां... रह-रह कर सर्र...र से गुज़रती पुलिस की किसी गाड़ी का सायरन अवश्य गूंज उठता. या फिर किसी आवारा कुत्ते की सहमी-सी 'भौं-भौं'. पर सन्नाटे की चादर फिर भी पसरी पड़ी थी... उसके अपने भीतर की तरह. उसकी आंखें बंद थीं अब. वह धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा... अपने भीतर. नीचे और नीचे. सीढ़ी-दर सीढ़ी सन्नाटा बढ़ा रहा था. वह ठिठका. गहरे तक झांकने की कोशिश की पर कुछ दिखाई न दिया. चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा. स्याह और डरावना अंधेरा. वह झुरझुराने लगा पर अचानक कोई हलचल-सी महसूस हुई. देखा वही गोल-गोल छल्ले फिर से गहराने लगे थे. घबराकर उसने अपनी आंखें खोल दीं. दरवाज़े के बाहर किसी पुलिस वाले के बूटों की आवाज़ आ रही थी. उसे लगा 'ठक...ठक' की आवाज़ उसके सीने से आ रही हो जैसे.

'ये कहां का न्याय है.....' उसके भीतर फिर से कुछ मचमचा उठा. गुस्से का गुबार हिला गया. सूखे पत्ते-सा कांप उठा वह. उसका दोष भी क्या था ? दोष.... ? ये तो उसे भी मालूम न था, दोष किसका था. ...पर तीन रोज़ पूर्व की घटनाएं उसने भी सुन ली थीं. अलबता उस रोज़ भी वह चारपाई पर लेटा था. बेसुध. पर अनवर की मां की आवाज़ से सब कुछ जान लिया था उसने. मां बार-बार उसके माथे पर गीली पट्टियां बदल रही थी. उसके चेहरे से लगता था शायद उसे अनवर की मां की बातों में दिलचस्पी न हो, पर सुन फिर भी रही थी. 'क्या बताऊं बहन...अनवर घर पर नहीं है.... और बहू को बुखार चढ़ा है. मैं अकेली जान क्या करूं... क्या न करूं. शहर में पुलिस भरी है.' अनवर की मां की बातें भी अजीब होतीं. पीपल में बोलती बड़ में जा बोलती. अनवर ट्रक चलाता है. होगा कहीं.... पर बात उसी से शुरू करके जहान भर की बातें मां के कान में धर गयी. झगड़े से लेकर कर्फ़्यू तक की बातें. झगड़ा...? कुछ अधिक भी न था. पर तिल का ताड़ बनते क्या जुग लगते हैं ? बात जन्मी नहीं कि जवान हो गयी. वैसे भी इन दिनों क़स्बे की हवा कुछ तीखी हो गयी थी... क़दम-क़दम पर शूल देने लगती.

सभी जाति के लोग थे क़स्बे में. ब्राह्मण से लेकर चमार-तेली तक. सिक्ख और मुसलमान भी. पर अधिक नहीं. उसकी मां बताती.... 'मेरी पड़-सास के बखत में तो यहां दो ही परिवार थे. करमू और सरफू के परिवार.....'.

पर अब बीसियों परिवार बढ़ गये थे. एक दो को छोड़ जो उनके घर के ऐन पिछवाड़े आ बसे थे, सभी एक ही मौहल्ले में थे. जो लोगों की जुबान पर 'मुसलमानों का मौहल्ला' हो चुका था. 'मुसलमानी मौहल्ले' और कस्बे के बाकी हिस्से के मध्य पुराना गोगा मंदिर था. किसी दरवेश की देह-सा.... तना हुआ. जो भादों आते ही चूने की पुताई से एक बारगी चमक उठता.

तनी हुई देह कुछ और तन जाती. मंदिर के चहुं ओर पड़ी खाली जगह में मेला भरता. भादों शुक्ल की दसवीं को सैलाब उमड़ पड़ता जैसे. रंगबिरंगे कपड़े पहने लोग ठठ-के ठठ भर जाते. कहीं कुश्ती-कबड्डी होती तो कहीं झूले डाले होते. सांझ होते मैदान फिर से खाली हो जाता पर दमकती चांदनी में संगमरमर से बनी मज़ार रात भर मुस्कराती होती. जो हिंदुओं के लिए देव-समाधि थी, मुस्लिमों के लिए पीर की मज़ार. ...पर उसके लिए न कोई हिंदु था न मुसलमान. शायद तभी तो अभी तक किसी ने मंदिर की ख़ाली पड़ी जगह की ओर आंख उठा कर भी न देखा था. वरना क़स्बे में कहीं भी कोई कोना-तिकोना न बचा था. क़स्बे में कोई मेहमान आता तो ख़ाली पड़े मैदान को हसरत भरी निगाह से देखता. क़स्बे वाले भी हुमक पड़ते.... 'मेला भरता है.....

मंदिर की ख़ाली पड़ी जगह के इस पार बसा मुसलमानों का मौहल्ला एक अलग गांव-सा दिखता. पर फिर भी दिलों में कहीं अलगाव न था. ईद के रोज़ मस्जिद के छोटे से प्रांगण से घरों तक उत्साह ढुल-ढुल पड़ता.... 'अरे सेवईयां लाओ भई...' खुशियों के रंग नाच-नाच उठते. हर हिंदु मुसलमान हो जाता. और हर मुसलमान.... हिंदु. होली होती चाहे दीवाली सरफू-करमू के वंशज पुलक उठते. फुलझड़ियां छोड़ती सलमा और दीया जलाती चुन्नी में कोई फरक न रह जाता.

पर अब... कुछ महिनों से हवा जैसे गंधिया गयी थी. एक तीखी-सी गंध अचानक हर किसी के नथुनों में भर जाती और माथे पर उभर आती. होंठों से बाहर आती बात का कोई सिरा भीतर कहीं जुड़ा रह जाता.

इस बीच दीवाली भी आयी पर... बड़ी चुप-चुप सी. मिट्टी की सौंधी-सौंधी ख़ुशबू वाले दियों के जलने से पहले ही वही गंध चुपके-से पसर गयी थी. पड़ोसी राज्य में दंगे क्या हुए सबके भीतर एक सहम घुस आयी थी शायद. हर कोई बतियाता हुआ अचानक चुप हो जाता. अपने दायें-बायें देखता... और होंठों से कान की दूरी कम हो जाती. अजीब तरह का चौकन्नापन आ गया था लोगों में. अलबत्ता खेतों में अब भी खुल कर बतियाते वे. खेत सिर्फ़ हिंदुओं के पास ही थे. जिनमें कुछ अधिक मालदार थे जो अपनी ज़मीन तीजिये-चौथिये पर जुताते. चमार-तेली सभी उन्हीं की खेती से बंधे थे. पर अब नयी पीढ़ी के कुछ-एक लड़के पढ़ लिख कर शहर तक भी बढ़ गये थे... नौकरी या दूसरे व्यवसाय में.

हां.... क़स्बे का व्यापार अब भी मुसलमानों के पास ही था. शुरू-शुरू में ज़मीनें न होने से कोई चारा भी न था इनके पास. पर अब.... ज़माना आगे बढ़ा तो पैसा भी बढ़ गया. परचून की दुकानें बड़े-बड़े 'जनरल स्टोर' में बदल गयीं. आटे-तेल की मिलें हों या कपड़ा-किराना की दुकानें, जूतों की दुकान हो या मेडिकल-स्टोर सभी कुछ इन्हीं के पास था. मेडिकल स्टोर...? हां.... मेडिकल स्टोर ही तो था झगड़े की जड़.

०१ जुलाई १९६६,
स्नातकोत्तर (राजस्थानी)

लेखन : 'हंस', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'उद्‌भावना', 'जागती जोत', 'राजस्थान पत्रिका' व 'दैनिक भास्कर' आदि में रचनाएं प्रकाशित.
आकाशवाणी से निरंतर रचनाएं प्रसारित.

प्रकाशन : "डौळ उडीकती माटी" (राजस्थानी कहानी संग्रह).

संप्रति : चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, राजस्थान.

इन दिनों क़स्बे में न जाने क्या हुआ था कि हर घर में दो-तीन मांचे रुंधे रहते. कहीं ग्लूकोज चढ़ रहा होता तो कहीं उल्टियां गिर रही होतीं. बुखार भी न जाने कैसा था जो उतरने का नाम ही न लेता. डॉक्टर दवा पर दवा लिखते जाते, पर...?

'दवाइयां नकली हैं'. हवा का कोई झोंका बहक गया. चिनगारी न जाने कब से दबी थी कि पूरा क़स्बा सुलग उठा. बरसों से बहती विश्वास की नदी अचानक दरक गयी. सूखा पाट फट पड़ा... 'चलो थाने में रपट लिखा दें....

'क्यों न प्रशासन को लिखें ?'

'नहीं अपना काम ख़ुद करेंगे.....'

जितने मुंह उतनी बातें. आखिर बातें हथियार हो गयीं. शाम होते-होते 'मुसलमानों का मौहल्ला' घिर गया. नमाज़ अदा करती शकूरी दादी की झुकी देह उठ न सकी. बकरी दुहते सलमा का सिर खूंटे से जा लगा. घर लौटते रहमत चाचा देहरी पर ही ढह गये.

खाली पड़ा मैदान यकायक लोगों से अट गया. बूढ़े हिंदुओं ने अपने ख़ून को उबलते हुए देखा. बच्चों का कौतूहल भी कब पीछे रहता. जवानों के हाथ से छूटते पत्थर अधिक दूर तक गये. कुछ एक मंदिर की गुंबद पर भी चढ़ गये थे.

भीतर दबी चिनगारी अब आग थी. जो देखते ही देखते मुसलमानों के मौहल्ले को लील रही थी. पहले दवाइयों की दुकान के शटर टूटे फिर एक एक कर कपड़े, किराने, चक्की और जूतों की दुकानें भी धू-धू कर जलने लगीं.

आसमान तक उठती सुर्ख़ लपटें तमतमाये चेहरों का दर्प थीं जैसे. ठठाकर हंसती वहशी लपटों ने सब कुछ निगल लिया... कुछ ही देर में. सब कुछ राख हो जाने पर नीचे धरती स्तब्ध थी और ऊपर आसमान अपने घुटनों में सिर रखकर सुबक पड़ा. स्याह रात के सीने को अपनी जवानी से रौंदते युवक हिंदु होने का प्रमाण देते रहे. जब तक शर्म से सर झुकाये सूरज रात की फटी ओढ़नी से अपना चेहरा दिखाता. सब कुछ स्वाहा हो चुका था. अरसे से दबी कुंठा का लावा अचानक बहकर शांत हो चुका था.

जब तक पुलिस आयी कस्बे में मरघटी शांति पसर गयी थीं. घरों के किवाड़ बंद थे और गलियां सूनी. अलबत्ता कुछ अधिक उत्साही युवक अब भी गली के नुक्कड़ पर जमे थे. पुलिस ने आकर धर दबोचा. रात का सीना नोंचने वाले अब पुलिस के बूटों तले थे. चीख़ें गूंजी तो घरों को चीरती चली गयीं. बस्ती फट पड़ी मानों. ईंट-पत्थर, लाठी-लक्कड़, जिसके जो भी हाथ लगा, हथियार हो गया. पुलिस चौंकी और भाग खड़ी हुई. ...पर पत्थर-भाटों ने अपना काम कर दिखाया. जीपों में भाग कर चढ़ने से पहले ही कुछ-एक पुलिस के जवान निशाने पर आ चुके थे...

पुलिस जिस तेज़ी से आयी, चली भी गयी. पर भीड़ का आक्रोश एक बार फिर से ग़ुस्से में बदल गया. पहले की कहानी एक बार फिर दोहरा दी गयी. पर अधिक देर तक नहीं. कुछ ही समय बाद सब कुछ शांत हो गया था.

पौ फटते-फटते पूरा क़स्बा पुलिस-फोर्स से अंट गया. जिला कलेक्टर ने आनन-फ़ानन में ही कर्फ़्यू के आदेश जारी कर दिये.

और अब... तीन दिन हो चुके थे. सब बंद थे, अपने-अपने घरों में. और वह....? वह ख़ुद भी तो बंद था.... अपने स्वयं के कर्फ़्यू में. चार दिन... चार महिने... चार वर्ष..., या...या... ? उफ़्फ़, एक-एक पल पहाड़ हो गया था मानों. भीतर की तपिश रह-रहकर आंखों में हुलक पड़ती: दहकते अंगारे होठें तक आकर ठहर जाते और वह बार बार होंठें को गीला करने की कोशिश करता. पर उसे लगता उसकी जीभ भी एक अंगारा हो गयी थी. गोल-गोल सुर्ख़ अंगारा. जो होंठो का स्पर्श पा कर कुछ और दहक उठता.

मां अब भी गीली पट्टियां रख रही थी. माथे पर हर नयी पट्टी के रखते ही उसकी आंखों में ठंडक का एक नन्हा-सा क़तरा उतर आता. पर अधिक देर तक नहीं. कोई दूसरा एक क़तरा उतर पाता उससे पहले ही फिर से वही आग...

भीतर के उसी कोने से गोल-गोल छल्ले उठते. छल्लों में दहकती आग उसके होंठें तक 'आह' बनकर चली आती... पर आवाज़ ? कहीं भीतर ही अटक कर रह जाती.

'आह....S' अचानक आवाज़ कुछ स्पष्ट होने लगी थी. उसने अपनी बंद आंखें खोलीं. लगा आवाज़ उसके होंठें से नहीं बल्कि

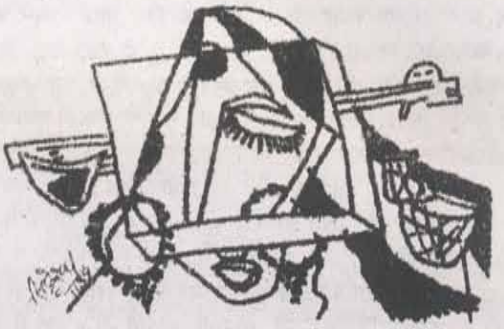

आंखों से आ रही थी. उसने ध्यान से सुनने की कोशिश की. 'आह' की आवाज़ अब कुछ अधिक तेज़ थी. उसने अपने सिर को झटकना चाहा.

'आह S..... आं SS....' आवाज़ रह-रहकर आ रही थी.

'मां SS.....' उसने पुकारना चाहा पर होंठ फड़फड़ा कर रह गये. गले में हज़ारों कांटे एक साथ उग आये थे जैसे. आवाज़ उन्हीं कांटों में फंस कर रह गयी थी. उसने ज़ोर लगाकर फिर से कोशिश की. सहसा उसकी पलकें खुल गयीं. देखा मां अब भी गीली पट्टियां कर रही थी.

'आं S.... आं SS.'

मां के हाथ थम गये. गीली पट्टी हाथ में थामे वह दरवाज़े की ओर देख रही थी. आवाज़ बाहर से आ रही थी. उसने लेटे-लेटे ही मां के चेहरे की ओर देखा फिर दरवाज़े की तरफ़ देखना चाहा. पर गर्दन जैसे पथरा गयी थी.

'कौन हो सकता है ?' उसने सोचना चाहा. पर उसके सोचने की शक्ति जैसे जल कर राख़ हो गयी थी. पूरा बदन लपटों से घिरा था.

मां कब की जा चुकी थी. काफी देर तक वह यूं ही लपटों से घिरा रहा. पर अचानक लपटें कुछ कम होने लगीं और बरसात फिर से होने लगी थी. थोड़ी ही देर बाद पूरी देह पसीने में भीग चुकी थी. 'आं... आह S' की आवाज़ अब उसे स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी. उसने गर्दन को घुमा कर देखा, मां अब तक नहीं लौटी थी.

वह काफ़ी देर तक यूं ही पड़ा रहा फिर उठकर बैठना चाहा. उसने अपने दोनों हाथों को चारपाई की बहियों पर रखा. होंठें को भींचा और धीरे-धीरे उठने की कोशिश की. पहले सिर उठा. कमर भी. पर अचानक आंखों के सामने अंधेरा छा गया. वह 'धम्म' से गिर पड़ा. सांसें उखड़ गयीं. मीलों भाग आया हो जैसे. पर कुछ देर बाद फिर से सामान्य था वह. उसने एक बार फिर से दोनों हाथों को बहियों पर टिकाया. गर्दन उठी... कमर भी. और... 'आह....S' इस बार वह सफल हो गया. बैठे-बैठे ही उसने अपनी सांसें नियंत्रित कीं और धीरे-धीरे चारपाई से नीचे उतर गया.

पर अचानक एक स्याह छल्ला आंखों में उतर आया. उसने झट से दीवार का सहारा ले लिया. कुछ देर यूं ही खड़ा रहा. लगा अब ठीक था. धीरे-धीरे सरक कर दरवाज़े तक आया. बाहर देखा. मां अनवर के घर की तरफ़ वाली दीवार के सहारे खड़ी कुछ सुन रही थी.

'आं...s....आह ss....' की आवाज़ अब अधिक तेज़ हो गयी थी. स्पष्ट भी. उसने ध्यान से सुना. यह तो अनवर की पत्नी की आवाज़ थी. 'तो क्या बुखार अधिक तेज़ हो गया है ?' वह बुदबुदाया. उसे पता था बुखार बढ़ने पर स्वयं उसके मुंह से भी ऐसी ही आवाज़ें निकलती थीं. नीम-बेहोशी की सी हालत में उसे अपने ही मुंह से निकलने वाली आवाज़ें अजीब-सी लगतीं. कुछ-कुछ डरावनी-सी.

वह कसमसाने लगा. बाहर किसी पुलिस वाले के बूटों की 'ठक-ठक' दूर होती सुनाई दे रही थी. उसने फिर से दीवार की ओर देखा. मां अब भी खड़ी थी वहां. पशोपेश में उलझी वह बार-बार अपना कान दीवार से सटा कर कुछ सुनने का प्रयास कर रही थी.

उसने मां को पुकारना चाहा पर आवाज़ जैसे चिपक कर रह गयी थी. भीतर कहीं से आवाज़ मचल कर होंठों तक आयी पर सिर्फ़ 'गूं...गूं..' में बदल कर रह गयी. उसने फिर दीवार की ओर देखा. अचानक उस पार का दृश्य उसकी आंखों में घुल गया.

बिस्तर पर लेटी अनवर की पत्नी का बदन तवे-सा जल रहा था. स्वयं उसी की तरह आंखें भी अंगारों-सी दहक रही थीं. उसकी बूढ़ी सास कभी उसकी बिछलती देह को सहलाती, कभी उसके माथे पर गीली पट्टियां रखतीं. उसकी उखड़ी हुई सांसों और कांपते हाथों से लगता बहू की पीड़ा वह स्वयं भोग रही थी. दवाई....?

'उफ़्फ़....'

दीवार के पार का दृश्य ग़ायब हो गया. उसे लगा दवा के अभाव में उसे भी मरना होगा. और उसे ही क्यों.... जब पूरा गांव ही औंधियाया था. कर्फ़्यू का भी क्या भरोसा... टूटे ना टूटे. अज़गर-सी लंबी गलियों में पसरा सन्नाटा सब को लील लेगा.

'ठक....ठक....ठक....' पुलिस वाले के बूटों की आवाज़ नज़दीक आती सुनाई दी.

'मां ss....' अचानक वह चिल्लाया. होठों तक आती आवाज़ इस बार फट पड़ी थी. इसके साथ ही उसके बदन में बिजली भर गयी जैसे. मां चौंकी. एक पल के लिए ठिठकी. फिर लगभग दौड़कर उसके पास पहुंच गयी.

पर.... तब तक देर हो चुकी थी. गली की तरफ़ का दरवाज़ा खुला और वह लहराकर दरवाज़े से बाहर निकल गया.

प्राथमिक स्वा. केंद्र, रामगढ़,
तहसील नोहर, जिला - हनुमानगढ़ (राज.) ३३५ ५०४.

आजकल शेरी ब्लेयर को...

तेजेंद्र शर्मा

आजकल शेरी ब्लेयर को, अच्छी नींद आती है,
ख़ूब आराम होता है, क्योंकि;
टोनी ब्लेयर के सपनों में तो सद्दाम होता है.
अब उसे सौत का कोई डर नहीं,
न ही किसी गर्लफ्रेंड का लफड़ा है.
उसके पति का सारा समय,
जॉर्ज बुश के साथ तमाम होता है.
क्योंकि टोनी ब्लेयर के सपनों में तो सद्दाम होता है.
कभी-कभी शेरी ब्लेयर होती है हैरान,
उसका पति तो प्रधानमंत्री था ब्रिटेन का
फिर अमरीका के विदेश मंत्री जैसा
क्यों काम होता है,
क्योंकि टोनी ब्लेयर के सपनों में तो सद्दाम होता है.
टोनी ब्लेयर बात-बात में
झाड़ी में क्यों घुस जाता है,
बुश को मिलने का बहाना ढूंढ़
अटलांटिक पार कर जाता है
सुबह शाम बस उसको ही सलाम होता है.
क्योंकि टोनी ब्लेयर के सपनों में तो सद्दाम होता है.
हिरोशिमा में बम बरसाने वाला भी सद्दाम था,
वियतनाम में मुंह की खाने वाला भी सद्दाम था,
तानाशाहों को शह देने वाला भी सद्दाम था,
झूठ बोलने वालों का बस यहीं अंजाम होता है,
क्योंकि टोनी ब्लेयर के सपनों में तो सद्दाम होता है.
भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी और महंगाई से क्या डरना,
इनकी मार से तो आम जनता को ही है मरना
राजनेता को ग़रीब की समस्याओं से
भला क्या काम होता है,
क्योंकि टोनी ब्लेयर के सपनों में तो सद्दाम होता है.
टोनी ब्लेयर उठो ब्रिटेन की अस्मिता को पहचानो,
अपने देश के इतिहास को जानो,
यहां सूर्य कभी अस्त नहीं होता था
क्या सूर्यास्त का अर्थ गहरी अंधेरी शाम होता है ?
क्योंकि टोनी ब्लेयर के सपनों में तो सद्दाम होता है.

**74 A, Palmerston Road,
Harrow & Wealdston,
Middlesex HA3 7RW (U K)**

कहानी

एलोरा

'यह क्या बाबा इतनी बड़ी, निंदनीय और त्रासद घटना पड़ोस में हो गयी और तुम मुझे चुपचाप अपने कमरे में जाने को कह रहे हो ? यू नो, आई एम द ओनली आई विटनेस ऑफ दैट होल ड्रेडफुल इवेन्ट'.

एलोरा ने आग्नेय नेत्रों से अपने अचंचल और निस्पृह, हाथ में अखबार लिये कुर्सी पर बैठे सूटेड-बूटेड पिता को क्रोध से देखते हुए कहा, जो उसे बचपन से आज तक अजनबी ही लगता रहा है.

'इसकी रिपोर्ट पुलिस में होनी चाहिए. कहे देती हूं मैं ख़ामोश नही रहूंगी.'

पंद्रह वर्षीय किशोरी एलोरा ने जैसा दृश्य अभी-अभी बस बीस मिनट पहले स्कूल से आते हुए अपनी मानसिक रूम से ज़रा कमज़ोर सहेली पारुल के साथ होते देखा था, वह किसी त्रासद निंदनीय टी. वी. सीरियल के दृश्य से कम नहीं था. एलोरा का किशोर मन एक ओर जहां कुछ भयभीत था तो दूसरी ओर कुछ इस तरह उत्तेजित था कि वह स्वयं को सही तरह से नियंत्रित नहीं कर पा रही थी. जो कुछ उसने अपनी असहाय सहेली के साथ होते देखा था वही पशुवत्, घृणित और निंदनीय दृश्य बार-बार भीति-चित्र की भांति उसकी आंखों के सामने आकर फ्रीज़ हो जाता.

'वे लोग अपराधी हैं और उन्हें सज़ा मिलनी ही चाहिए.' उसका मन सहेली की पीड़ा से संत्रस्त छटपटा रहा था. वह अपनी सहेली पारुल की मानसिक शांति और सुरक्षा के लिए शोंजोय काका और बिल को कटघरे में देखना चाहती थी. लेकिन उसका 'पिन स्ट्राइप्ट डबल-ब्रेस्टेड सूट में घुसा पिता उसे चुपचाप जा कर, कायर की तरह, निष्क्रिय अपने कमरे में बैठने को कह रहा है. कैसा है यह आदमी ! अभी वही दृश्य यदि टीवी पर होता तो वह उत्तेजित होकर देखता भी जाता और किसी अदृश्य श्रोता को सुना-सुना कर अंग्रेजों को उनके असभ्यता, उच्छृंखलता और दिनों-दिन उदार होते जा रहे क़ानून पर गालियां भी निकालता जाता.

देवेन बोस अपनी लंदन में जन्मी पली-बढ़ी पांच फुट पांच इंच की तंदुरुस्त किशोरी बेटी की पंद्रह वर्षीय ख़ूबसूरत युवती में विकसित हो रही देह में, अंग्रेज़ युवतियों वाले ठसकेदार क्रोध, तिलमिलाहट और निश्चय का बेबाक तुर्रा देख कर अंदर ही अंदर हिल उठे थे. उनका मन अजीब नर्वस तरंगों से भरभरा कर अर्राने लगा. इस समय उन्हें अपनी पत्नी बेला की सख़्त ज़रूरत महसूस हो रही थी... ऐसे समय में बेला अगर आस-पास होती तो वह अख़बार देखते हुए लड़की को कुछ न कह कर पत्नी को ही रोब से डपटते.

वास्तव में देवेन बोस आम एशियन मूल के लोगों की तरह हर प्रकार के पुलिस और कोर्ट-कचहरी के झगड़े-झंझट से दूर ही रहना पसंद करते हैं. वे भीरुता की हद तक नम्र और शांतिप्रिय हैं. बीस वर्ष ब्रिटेन में रहने के बावजूद भी, गोरे पुलिस अफ़सर को देखते ही न जाने क्यों उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है. वे या तो अपना रास्ता बदल लेते हैं या अपनी सुरक्षा के लिए अंदर ही अंदर बिला वजह ख़ुद को एक वकील की तरह तैयार करने लगते हैं.

उषा राजे सक्सेना

डबलब्रेस्टेड पिनस्ट्राइप सूट, टाई और क्लार्क के जूतों में देवेन अपने लोगों पर 'वेल ड्रेस्ड इलीट' साहब होने का ही प्रभाव डालना चाहते हैं. घर में भी वीक एन्ड पर वे सदा अपने साहबी लिबास में 'फाइनेन्शियल टाइम्स' पढ़ते या क्रीमती क्रिस्टल कट ग्लास में विस्की-सोडा पीते 'फ्रंट रूम' में नज़र आते हैं. वे अपने देसी बंधुओं को सदा ज़रा नीची निगाह से भी देखते हैं इसलिए वे उन्हें 'दोज़ इंडियन्स' या 'देम इंडियन्स' कह कर ही संबोधित करते हैं. उनसे बातें करते वक़्त वे साधारण से साधारण बातों को ऐसे गंभीर, सारगर्भित, सांकेतिक 'सूडो इंग्लिश ऐक्सेन्ट' में बोलते कि उनके परिचित देसी लोग उन्हें बहुत बड़ा अंग्रेजी-दा विद्वान सोचने-समझने लग जाते.

'तुम बॉएशो छोटो, तोमार कोनो शांबोधो एतेने एलोरा'... इस समय वे अपनी इंडो-ब्रिटिश युवा बेटी के मनोविज्ञान को प्रभावित करने के लिए अपनी मातृ-भाषा ख़ालिस कलकतिया बंगाली में बोले.

'आमी की छोटो ! हुंह !' थोड़ी-बहुत बंगाली बोलने-समझने वाली उनकी किशोरी बेटी एलोरा ने मुह बनाते हुए, उत्तेजित हो कर गर्दन पर आगे की ओर झुक आये बालों को ज़रा ज़ोर से झटका देते हुए पीछे की ओर फेंका फिर तन कर सख़्त आवाज़ में अपनी टीचर मिस इनबार की तरह ठेठ 'ब्रिटिश एक्सेंट' में बोली.

'बाबा, मैंने सब कुछ अपनी आंखों से देखा है, पारुल पलंग पर चित पड़ी छटपटाती हुई हाथ पांव छुड़ाने की कोशिश कर रही थी. उसकी स्कर्ट को ऊपर की ओर खींच कर, सिरहाने खड़े बिल ने उसके दोनों हाथों को नीचे कस कर दबा रखा था और शोंजोय

सरकाते हुए उसकी टांगों को घुटनों से दबाये उसके ऊपर झुका बैठ उसे बस फ़.....'

'एला...,' बेटी को बीच में ही डपटते हुए देवेन जोरों से अंग्रेजी में चीख़े, 'तुम्हें यह सब कुछ भी कहने सुनने की कोई ज़रूरत नहीं है. जब हम बड़े यहां पर हैं तो तुम्हें इन बातों में पड़ने की कोई ज़रूरत नहीं है. शेफ़ाली को इस तरह से किशोरी लड़की को घर में, कुंआरे देवर के साथ अकेला नहीं छोड़ना चाहिए था. यह सब शेफाली के इतना महत्वाकांक्षी और ज़रूरत से ज़्यादा अंग्रेज़ियत का फल है....' यह सब कहते हुए उन्हें ज़रा भी ध्यान नहीं रहा कि वे स्वयं क्या हैं. उनके ख़ुद का रहन-सहन, पहनावा-ओढ़ावा लोगों पर क्या प्रभाव डालता है या लोगों के मन में उनकी क्या छवि है.

'क्या स्टुपिड बात करते हो बाबा, इस समय तुम्हें बाबा कहते हुए भी मुझे लज्जा आ रही है.' घृणा और अवमानना से किशोरी एलोरा ने अपने पिता के मर्दाने-हित-दंभ (मेल शुविनिष्टिक) दृष्टिकोण पर पैर पटकते, कंधा उचकाते हुए आहत मधुमक्खी का सा डंक मारा.... वह बचपन से ही बाबा के दोहरे मानदंड और विषम मनोवृत्तियों से कनफ्यूज्ड और आतंकित रही है. छोटी थी तो कभी-कभी रूखे-दंभी बाबा उसे कहानियों में वर्णित 'फी-फाय-फ़ो-फम' कहते हुए अत्याचारी दैत्य या सौतेले बाप ही लगते थे. बचपन के उसी भय से लड़ते-लड़ते वह अब निर्भीक, निडर, विद्रोही एकदम 'ब्रिटिश टीन-एजर' नज़र आती है. वैसे भी जिस निःशंक, सुरक्षित, स्वतंत्र और उदार परिवेश में उसका व्यक्तित्व विकसित हो रहा था उसका पूरा असर उसके उठने-बैठने, बात-व्यवहार, चाल-ढाल में पूरी तरह से अभिव्यक्त होता है. वह ख़ुद को ब्रिटिश-इंडियन कहने में अजब सा सुख पाती है. एलोरा ने कभी अपनी इंडियननेस को नकारा नहीं है बल्कि स्कूल में दीवाली, दुर्गा-पूजा और 'इंटरनेशनल इवनिंग' की परंपरा उसी की नेतागिरी में डाली गयी है. स्कूल में उसे एक अच्छी 'रिस्पॉन्सिबुल', 'इंटेलिजेंट' छात्रा माना जाता है. वह अपने 'फार्म' की कैप्टेन है साथ ही अपने साथ की लड़कियों की गाहे-बगाहे कॉउंसिलिंग भी करती है. बाबा का उसे बार-बार 'बच्ची' कहना कुछ इस तरह से घायल कर गया कि वह बाबा को क्षमा नहीं कर पा रही थी. अतः वह अपने परिपक्व होते किशोर व्यक्तित्व की सुरक्षा में उन्हें जितने व्यंग्य-बाण, निर्दयता से मार सकती थी मार रही थी....

'तुम शेफ़ाली आंटी को दोष दे रहे हो, इसलिए कि उन्होंने उस गैर ज़िम्मेदार, लंपट पति को पंद्रह साल झेला, भारत में रहनेवाले उनके दरिद्र परिवार को घर-ख़र्च के पैसों में से कटौती कर, भेज-भेज कर संभाला. वह बास्टर्ड, शोंजॉय, पारुल के मृत बाबा का छोटा भाई नहीं है क्या ? तुम बजाये उस 'मैनकिन' शोंजय को बुरा-भला कहने के बदले शेफ़ाली आंटी को बुरा-भला कह रहे हो. यह कैसा झूठ पौरुषीय दंभ से भरा स्टेटमेंट है तुम्हारा. क्या उस निकृष्ट जानवर शोंजॉय के नृशंस, अनैतिक व्यवहार

उषा राजे सक्सेना

गोरखपुर (उ. प्र.); एम. ए. (अंग्रेजी)

लेखन : कविताएं, कहानियां एवं आलेख आदि भारत, अमेरिका एवं योरप की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर छपते रहे हैं. इनके लेखन में अपने देश, सभ्यता, संस्कृति तथा भाषा के प्रति सच्चे अनुराग के साथ प्रवासी जीवन के व्यापक अनुभवों, करुणा और गहन सोच का मंथन मिलता है.

प्रकाशन : 'प्रवास में', 'वार्किंग पार्टनर' (कहानी संग्रह); 'मिट्टी की सुगंध' (संपादित संग्रह), 'विश्वास की रजत सीपियां', इंद्र धनुष की तलाश में' (काव्य संग्रह), व्याख्यानों की एक पुस्तक 'व्याख्यान-माला' प्रकाशनाधीन.

सम्मान : 'हिंदी विदेश प्रसार सम्मान' (उ. प्र. हिंदी संस्थान-लखनऊ) प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी के करकमलों से; पदमानंद साहित्य सम्मान (यू. के.) - २००५.

विशेष : पिछले चार दशकों से लंदन की विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं में महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रही हैं. अनेक रचनाएं अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित. कुछ रचनाएं जापान के ओसाका विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में सम्मिलित.

संप्रति : ब्रिटेन की एक मात्र हिंदी साहित्यिक पत्रिका 'पुरवाई', की सह-संपादिका तथा 'हिंदी समिति (यू. के.)' की उपाध्यक्षा. स्वतंत्र लेखन.

को तुम अनदेखा नहीं करना चाह रहे हो ? बोलो...बोलो ना ?' उसने अपने पिता की आंखों में सीधा देखते हुए ललकारा. एलोरा को इस समय अपनी मां बेला याद आयी जो सदा देवेन के हर सही-ग़लत बातों को ऐसे गर्मा-गर्मी के वक़्त, घर की शांति बनाये रखने के लिए चुपचाप अपने सिर पर ओढ़ लेती और फिर धीरे-धीरे, चुपके-चुपके, ख़ामोशी से, अपने व्यक्तिगत ढंग से ऐसी गंभीर, गड़बड़ और त्रासद स्थितियों की सिकुड़नों पर पैबंद लगाती, इस्तरी फिराती देवेन के अहम को दुलराती है. वह बेला नहीं है, वह एलोरा है. न्याय और अन्याय के बटखरों को खूब अच्छी तरह पहचान कर बखूबी ठोंक-पीट कर उन्हें ठीक करना जानती है.

इधर देवेन अपनी किशोरी लड़की के इस आक्रामक आक्षेप, कड़क तार्किक परिपक्व सत्य को सुन, सकपका कर, चकरा उठे. पत्नी बेला होती तो ऐसी परिस्थिति को वह क़ाबू में करते हुए उनकी इज़्ज़त बचा जाती, क्या करें वे ? उनका दिमाग़ झनझना उठा फिर भी वह ख़ुद को संतुलित करते हुए बाप के बड़प्पने की

चादर पूरी ताक़त से फटकारते हुए सख़्ती से बोले, 'एलोरा तुम समझ क्यों नहीं रही हो, तुम अभी बच्ची हो'.

'तुम बार-बार मुझे बच्ची कह कर मेरी बातों को उड़ा क्यों रहे हो. मैं बच्ची नहीं हूं. किशोरी हूं, युवा हूं. अगले दो सालों में मैं वयस्क होकर यूनिवर्सिटी में पढ़ने जाऊंगी.' एलोरा ने तनकते हुए पिता को अवमानना से देखते हुए, आक्रामक स्वर में कहा, 'मैंने ही स्कूल से आते हुए उन दोनों हरामज़ादों को पारुल के साथ वह अमानवीय कुकर्म करते हुए देखा था, मेरे ही क़दमों की आहट से वे दोनों कायर घबराकर भागे थे.'

देवेन लड़की के जवाब और शब्दावली से बुरी तरह बेचैन हो उठे, उनके पैरों का रक्त निचुड़ता जा रहा था. हृदय बुरी तरह से धकधक कर रहा था. उन्हें पत्नी बेला का वहां न होना बुरी तरह खटक रहा था. बेला होती तो ऐसी कठिन परिस्थिति को ज़रूर ही कोई नया मोड़ दे कर प्रसंग पलट देती...

'एलोरा अभी तुम्हें इतनी समझ नहीं है, हो सकता है यह सब तुम्हारा भ्रम ही हो. और अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है जो ऐसी किसी घटना को गहराई से समझ सको. तुम्हारे देखने में ग़लती हो सकती है. हो सकता है तुम्हारी दोस्त पारुल को उस समय फिट पड़ा हो और वे दोनों....'

एलोरा ने उन्हें बात पूरी नहीं करने दी. क्रोध से उसने उनके आधे वाक्य को झपटते हुए, तीखे व्यंग्यात्मक लहज़े मे कहा, 'मुझे समझ नहीं है !... मेरी उम्र ही क्या है ! पारुल... को फिट पड़ा हो.... मैं स्कूल में बायलोजी नहीं पढ़ती हूं ? ....मैं पुरुष और स्त्री के अंगों को नहीं पहचानती ? उस मैनियाक के चेहरे पर जो भाव था वह मैं नहीं जानती क्या ?' उसने पिता को क्रोध और हिक़ारत से देखते हुए तनतनायी आवाज़ में आगे जोड़ा 'बोलो, फिर वे दोनों भागे क्यों ? मेरी आंखें कमज़ोर हैं क्या ? रेशमा आंटी और पीटर हेनरिक ने उन दोनों को फ़ेन्स फांद कर तेज़-तेज़ भागते देखा है, उन लोगों ने शोंजोय काका और बिल को आवाज़ भी लगाई, पर वे दोनों रुके नहीं... कायर, अपराधी मुंह छिपा कर भाग गये....'

लड़की के विस्तृत ब्योरे और वाकपटुता से देवेन संकुचित, नर्वस और लज्जित हो रहे थे. अतः उन्होंने लड़की की बात पूरी तरह से नहीं सुनी. घबराहट के कारण उन्हें अपनी आवाज़ खोखली और थरथराती हुई लगी. फिर भी, अपने बड़प्पन की कमान को साधे रखने की कोशिश करते हुए, वे संतुलित और गंभीर आवाज में एलोरा को ज़रा समझाते-धमकाते हुए बोले, 'देख बेटी, बात को समझ, इस बात को हमें घर परिवार के बाहर नहीं जाने देना चाहिए. तुम चुपचाप इस दुःखद घटना को ख़ामोशी से भूल जाओ. हम बड़े इस बात को आपस में 'डील' कर लेंगे. शोंजोय को भी हम अच्छी फटकार देंगे. इस अशोभनीय बात के बाहर जाने से हम सबकी बदनामी होगी. जग-हंसाई होगी, अंग्रेज हमें वैसे ही अच्छी दृष्टि से नहीं देखते हैं.'

'बदनामी' और 'जग-हंसाई' पर ज़रा जोर देते हुए वस्तु स्थिति को संभालने के लिए उन्होंने एलोरा को समझाना चाहा... उन्हें फिर पत्नी बेला की याद आयी, वह होती तो परिस्थिति हाथ से बाहर जाने देती क्या ? यह लड़की तो स्प्रिंग-बोर्ड की तरह ऊंची-और ऊंची उछलती ही जा रही है.

'जग-हंसाई ? बदनामी ? पारुल की बदनामी ? शोंजोय काका की बदनामी ? मेरी बदनामी? किसकी बदनामी की बात कर रहे हो ? जानते हो, अपराधी के अपराध को छिपाना कितना बड़ा जुर्म है ? मैं उस शोंजोय के बच्चे की रिपोर्ट कर के रहूंगी...'

'और बाबा....'

देवेन के व्याकुल चेहरे और माथे पर आये पसीने को देख कर, उसने उन्हें ज़रा सहज करने के लिए थोड़ी नर्मी से कहा, 'तुम इस शोंजोय काका को नहीं जानते, वह सिर्फ़ तुम लोगों के सामने बस विनीत और सभ्य बना फिरता है वर्ना उस जैसा हरामी काला कुत्ता तुम्हें कहीं नहीं मिलेगा. वह केवल लड़कियों को छेड़ता नहीं, उनका घेराव कर के उन्हें तरह-तरह से पीड़ित भी करता है.

ओरे बाबा ! यह मेरी किशोरी लड़की तो बड़ा उपद्रव करती है. देवेन मन ही मन बुरी तरह विचलित हो रहे थे. लड़की का इस तरह तेज़-तर्रार सवाल-जवाब कर लेना उन्हें एक तरफ़ बेचैन कर रहा था तो दूसरी तरफ़ न जाने कैसा सुख भी दे रहा था. बेला ने लड़की का लालन-पालन समय के हिसाब से शायद अच्छा ही किया है, उन्होंने सोचा. यह लड़की तो खूब अच्छी वकील बनेगी, उनके अचेतन मन में दबा कोई सपना अंकुरित होता दिखा...पर फिर पल भर बाद ही बेटी का घायल सिंहनी-सा गरजता क्रोध देख कर वे इस तरह बौखला उठे कि उन्हें अपनी सांस रुकती सी लगी. बेला की अनुपस्थिति उन्हें नागफनी के नुकीले कांटे-सी चुभ रही थी. बेला को भी इसी समय जाना था. उसने वक़्त भी कैसा चुना, सारा दायित्व मुझ पर छोड़ कर कोलकाता जाने के लिए ! वे झल्लाये, खीझे पर फिर उन्होंने अपनी सारी शक्ति को बटोरते हुए एक बार फिर अपनी मध्यवर्गीय संकीर्ण, सोच-समझ का प्रयोग कर एलोरा को समझाना चाहा. जाने क्यों एलोरा के तर्क-वितर्क अब उन्हें नर्वस करने के साथ-साथ कुछ-कुछ गर्वित भी करने लगे थे....

'एली तुम ऐसा कुछ नहीं करोगी, वे लोग हमारे 'फैमली फ्रैंड' हैं. इससे कई ज़िंदगियां ख़राब होंगी. लोग तुम पर भी कीचड़ उछालेंगे. सोशल वर्कर, पुलिस, कोर्ट कचहरी सब इन्वॉल्व होगा. नहीं ! नहीं ! हम लोगों को इन सब से दूर रहना चाहिए. कोर्ट कचहरी में बड़ी छीछालेदर होती है बेटी... और ये अंग्रेज... ये गोरे लोग हमारे साथ भला न्याय करेंगे क्या ?' देवेन ने अपनी उमंगती थरथराती आवाज़ को साधने का प्रयास किया. यह लड़की अनायास ही उपद्रव नहीं कर रही है इसकी बातों में कानूनी दांव-पेंच और दम-ख़म है. वे सोचने लगे...

आज तक उन्होंने अपनी इस अपरिचित-सी, युवा होती, किशोरी बेटी के साथ इतनी बातें और वह भी आमने-सामने कभी नहीं की थीं. लड़की के पालन-पोषण का विभाग बेला का था. घर-गृहस्थी औरतें ही चलाती हैं. उन्होंने अपनी सुविधानुसार यह सारा बंटवारा घर गृहस्थी बनाने से पहले ही बेला के साथ कर लिया था. कोट-पैंट टाई में हर पहर 'ब्रिटिश सिविल सर्वेंट' से दिखनेवाले देवेन बोस ने सपनों में भी नहीं सोचा था कि उनके घर में ऐसी कोई विस्फोटक स्थिति आयेगी. ख़ुद को संयत करने के लिए उन्होंने टाई के नॉट को कसते हुए कोट के तीसरे बटन को अनायास ही खोल दिया. देवेन जाने कैसी बेचैनी महसूस कर रहे थे. अतः उन्होंने तोंद पर से जरा नीचे सरक आयी पैंट को थोड़ा ऊपर की ओर खींच कर ख़ुद को संयत किया.

यह भयंकर विस्फोटक स्थिति उनके अंदर अजब सी भय-मिश्रित थरथराती उत्तेजक गर्म और ठंडी लहरियां पैदा कर रही थीं. उन्हें यह भी नहीं पता चल रहा था कि वे हर्षित हैं या उद्वेलित हैं. निश्चय ही यह तेज़-तर्रार, बिजली का करेंट मारती लड़की भविष्य में उस लड़के की कमी पूरी करेगी, जो पैदा होते ही उन्हें देखे बिना, आंख मूंद कर दुनिया से चला गया. उन्हें लगा, बेला की अनुपस्थिति में, बेटी से उनका यह कोई नवीन मित्रवत संबंध विकसित हो रहा है. कोई शीतल हर्ष-लहरी उन्हें अंदर-अंदर हुलसा रही थी. यह कल की लड़की कैसे उनके पुरुष-अहम को बार-बार ललकारती है ? उन्होंने दुलराती हुई कोमल दृष्टि एलोरा पर डाली. आख़िर यह उन्हीं की बेटी है, उसे ऐसा ही होना चाहिए. वह महसूस कर रहे थे कि उनके अवचेतन मन की कुंठित अभिलाषाएं उनकी यह बेटी एलोरा भविष्य में निश्चय ही साकार करेगी. वह भी तो वकील बनना चाह रहे थे पर परिवेश के दबाव और तनाव ने उन्हें विकसित होने का मौक़ा ही कहां दिया ? वे तो बस अभावों के अनुदार परिवेश के बीच दब कर रह गये. फिर कुछ बड़े होने पर, सज्जन और सभ्य दिखने के लिए मुंह पर गंभीरता का मुखौटा लगा, वह एक भीरू पुरुष बन गये. उन्हें फिर बेला की याद आयी, बस वही तो उनके मन को ठीक से समझ पाती है.

'तुम मेरी समझ में एकदम नहीं आ रहे हो बाबा. लगता है तुम एकदम कनफ्यूज्ड और नर्वस हो रहे हो. इसमें अंग्रेज और इंडियन की क्या बात है ? क्या अंग्रेज हमारी तरह इंसान नहीं ? क्या तुम यह कहना चाहते हो कि बलात्कार अंग्रेजों की सभ्यता है ? क्या हम अन्यायियों के देश में रह रहे हैं ? क्या यह देश सिर्फ़ उनका ही है ? हमारा नहीं है !'

अभी देवेन बोस ने कुछ कहने के लिए मुंह खोला ही था कि वह फिर बोल पड़ी, 'हम ब्रिटिश ट्रेजरी को टैक्स और नेशनल इंश्योरेंस नहीं देते क्या ? हम न्याय के लिए, किसी और देश जायेंगे क्या ?'

फिर हमने पिता को समझाते हुए कहा, 'बाबा, हम इस देश के बाशिंदे हैं और यही हमारा देश है. यहीं का क़ानून हमें न्याय देगा, हमारी रक्षा करेगा. हमें अपनी आवाज़ दबानी नहीं, उठानी होगी. तभी तो इस देश में, इस समाज में, लोग हमें जानेंगे कि हम उन्हीं की तरह इसी देश के 'टैक्स-पेइंग' नागरिक हैं. हम यहां के अतिथि नहीं हैं हम यहां के रेज़िडेन्ट हैं.'

'तुम नहीं समझ सकती हो. यह बहुत महीन बात है. शोंजोय तो फंसेगा पर बिल अंग्रेज होने के नाते छूट जायेगा.' तमाम कोशिशों के बावजूद भी देवेन अंग्रेजों से अनायास ही भयभीत होने की अपनी औपनिवेशक गुलाम मानसिक दासता और भीरुता को इस निष्कपट, तेज़-तर्रार, निडर, लड़की से छिपा नहीं पा रहे थे....

एलोरा फिर बिफर पड़ी, 'क्यों छूट जायेगा बिल ? क्या मतलब है तुम्हारा, क्या कानून बिल की उपस्थिति को नकार देगा बावजूद इसके कि वह शोंज़ोय काका का इस अनैतिक कार्य में नंबर वन का एलाई है. दोनो ही पारुल को रेप करने की कोशिश में थे. मुझे तो बाबा तुम भी अप्रत्यक्षरूप से शोंजोय काका के एलाई लग रहे हो. तुम्हारी हर बात यह साबित करने की कोशिश कर रही है कि शोंजोय काका के कुकृत्य को किसी तरह अनदेखा कर दिया जाये. कैसी है यह सहानभुति तुम्हारी ? बदचलन, अपराधी शोंजोय काका के साथ और कैसा है यह कॉम्प्लेक्स तुम्हारा गोरे रंग के साथ... '

'बाबा, अब मैं तुम्हे साफ़ बताती हूं,' एलोरा ने पिता के बदलते तेवर को पहचान कर फ़ैसला सुनाते हुए कहा, 'तुम्हें अच्छा लगे या बुरा... पुलिस के पास रिपोर्ट तो पारुल ही लिखायेगी. क्यों कि विक्टिम वह है. मैं उसे पूरी तरह सपोर्ट करूंगी क्योंकि मैंने ही सब कुछ अपनी आंखों से देखा है. मैं 'आय विटनेस' हूं. मुझे सोशल वर्कर, पुलिस, कोर्ट-कचहरी, वकील, किसी से डर नहीं लग रहा है. वे लोग पारुल और मुझसे सहानुभूति रखते हुए केस लड़ने के लिए 'लीगल ऐड' देंगे. ज़रूरत हुई तो मैं ख़ुद पारुल की ओर से केस लड़ूंगी. मैं तुम्हें निश्चित ही बताती हूं, मुझे सच का साथ देते हुए कभी डर नहीं लगता है. अगर मुझे कभी डर लगता है तो ऐसे अपराधियों से जिन्हें तुम जैसे भीरू स्वभाव वाले लोग बेहूदे सामाजिक भय के कारण उन्हें कुत्ते से भेड़िया बनाने में सहायक होते हैं... अगर शोंजोय काका को कोई सज़ा नहीं मिलती है तो ज़रूर ही एक दिन वह 'यॉर्कशायर रिपर, पीटर सटक्लिफ़', (इंग्लैंड का कुख्यात रेपिस्ट जिसने ग्यारह रेप किये) की तरह सारे देश में आतंक फैलाता हुआ घूमेगा. मेरी समझ में नहीं आता लड़कियों के मानसिक संत्रास को, समस्याओं को, भावनाओं को न समझने की, उन्हें महत्व न देने की, यह कैसी परंपरा तुम आज भी २१वीं सदी में चलाये चले जा रहे हो... '

54 Hill Road, Mitcham, Surrey CR2 2HQ (U K).
e-mail : usharajesaxena@hotmail.com

कहानी

कोहरा

जमीला ने बहुत सोच समझकर यह निर्णय लिया था. वह जानती थी कि, उसके पिता अब उसकी सूरत तक देखना गवारा नहीं करेंगे. मां तो रो-रो कर जान ही दे देंगी. शायद रशीद भी उससे रूठ जाये और आज के बाद से वह कभी नन्हीं साजिदा को प्यार भी न कर सकेगी. उसका दिल भर आया. करीब था कि, आंखों में आंसू भी छलछला आते, मगर बड़ी कठिनाई से उसने उन्हें भीतर घोंट दिया और तब बगल में सोई हुई साजिदा का माथा चूम लिया. उसने अपने निर्णय पर बहुत विचार किया कि, शायद कहीं कोई भूल तो होने नहीं जा रही है. या बाद में उसे पछताना तो नहीं पड़ेगा. मगर उसे महसूस हुआ कि, उसके सामने अब इस एक रास्ते के अलावा कोई अन्य रास्ता नहीं है. यदि उसने थोड़ी भी कमज़ोरी दिखाई तो फिर वह ज़िंदगी भर यों ही घुटती और कुढ़ती रहेगी.

वह घुटन जो वर्षों से उसके अस्तित्व को चारों ओर कुहरे की तरह जाल बुन रही थी, उससे मुक्ति पाने का अब मात्र एक यही मार्ग था. वह मार्ग जो उसकी दुखभरी ज़िंदगी में ख़ुशियों के फूल खिला सकता था. उस रास्ते में बदनामी थी. मां-बाप की नाराज़गी थी. बिरादरीवालों की अवहेलना थी. छोटे-छोटे भाई-बहनों से बिछड़ने का दुख था, इसके बावजूद वह रास्ता कितना आकर्षक था. आकर्षक और सुखदायक. इसकी कल्पना मात्र से ही उसका दिल धड़कने लगा और सारे शरीर में एक उन्मत्त कर देनेवाली विचित्र सी कंपकंपी दौड़ गयी.

उसने आत्मविस्मृत हो, आंखें बंद कर लीं. आंखें बंद करते ही उसके सामने असलम आकर खड़ा हो गया. मुसकराता, अपने काले, चमकते, लंबे-लंबे बालों पर हाथ फेरता. बांहें फैलाये उसे अपनी ओर बुलाता. कैसी सुंदर कल्पना है. कल्पना ही क्यो ? असलम तो आज ही उसे हमेशा-हमेशा के लिए अपना बनाने को तैयार है.

मगर अचानक उसे अपने बाप मौलवी जमालुद्दीन पर बहुत क्रोध हो आया. उसके बाप मौलवी जमालुद्दीन एक कट्टर मज़हबी आदमी थे. नमाज़ रोज़े के पाबंद. उनका हर काम इस्लामी उसूलों के अनुकूल होता था. नियमित रूप से नमाज़ पढ़ना और बेनमाज़ियों को नमाज़ की दावत देना ही उनकी ज़िंदगी का उद्देश्य बन गया था. वे हर स्थान पर, हर किसी से हदीस और कुरान की बातें करते नज़र आते. उनका अधिक समय मस्जिद में हौज़ के किनारे लोगों को हदीसें सुनाने और धर्म-प्रचार संस्था के साथ प्रचार करते फिरने में ही व्यतीत होता था. वे एक छोटे से मदरसे में बच्चों को कुरान पढ़ाते थे. मासिक पांच सौ रुपये मिलते थे. वे पांच सौ के पांच सौ नियमित रूप से अपनी पत्नी के हाथ में लाकर रख देते और फिर महिनाभर कभी यह नहीं पूछते कि,घर का खर्च कैसे चल रहा है. उन्हें अवकाश ही कहां मिलता था मस्जिद और धर्म-प्रचार से, कि घर के बारे में भी सोचते.

शुरू में उनकी पत्नी ने घर की बिगड़ती परिस्थिति की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करना चाहा. मगर उन्हें धर्म के कामों का कुछ ऐसा चस्का पड़ गया था कि, संसार के काम ही भूल गये थे.

सलाम बिन रज़ाक

घर में पत्नी प्रसव पीड़ा से छटपटा रही है, मगर वह अल्लाह का बंदा मस्जिद में लोगों को प्रवचन देने में व्यस्त है. घर में दो-दो वक्त का उपवास हो रहा है और मौलवी साहब गली-गली लोगों को धर्म उपदेश करते फिर रहे हैं. बच्चे एक-एक बूंद दूध के लिए तरस रहे हैं और उनके कान पर जूं तक नहीं रेंगती. जब उनके यहां पांचवा बच्चा जन्मा तो पत्नी ने दबी ज़बान से आगे के लिए सतर्क रहने को कहा और संकेतों में यह भी कह दिया कि, जमीला बड़ी हो रही है, अब हमें उसकी चिंता करनी चाहिए.

मगर मौलवी साहब ने पत्नी को डांट दिया, "यह क्या प्रलाप करती हो ? क्या तुम लोगों का अल्लाह पर विश्वास उठ गया ? जो पैदा करता है, वह खिलाता भी है. क्या तुम नहीं जानतीं कि, इस्लाम विषय, वासना को मारकर साधु बन जाने को मना करता है. जमीला की चिंता करने वाले हम कौन हैं, अल्लाह बहुत बड़ा है, वही सब का रब है."

इस प्रकार मोटे-मोटे तर्क देकर उन्होंने अपनी जाहिल पत्नी को चुप करा दिया. और "एक के बाद एक" का क्रम बराबर चलता रहा. जब जमीला जवान हुई तो उसकी मां सातवें बच्चे को जन्म दे चुकी थी.

मां, जमीला का बड़ा ख़्याल रखती थी. उन्होंने अपने पति के विरोध के बावजूद उसे मैट्रिक तक पढ़ाया. जमीला ने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की. स्कूल कमेटी ने उसे स्कॉलरशिप देकर आगे पढ़ाना चाहा. मगर मौलवी साहब ने जमीला को कॉलेज भेजने से स्पष्टतः इंकार कर दिया. कमेटी के कुछ सदस्यों ने उन्हें समझाने का प्रयत्न भी किया. मगर उन्होंने फिर वही मज़हबी तर्क-वितर्क की कुंजी से उनका मुंह बंद कर दिया.

जमीला जब तक स्कूल जाती रही, उसे घर की अधिक चिंता नहीं थी. वह इतना तो जानती थी कि, उसकी मां घर का ख़र्च बड़ी कठिनाई से चला पाती है. मगर इसके लिए उसे स्वयं कभी परेशान नहीं होना पड़ा था. क्योंकि, सारी चिंताएं उसकी मां झेल लेती थी. अब जब स्कूली शिक्षा से फ़ारिग़ होकर वह घर में बैठ गयी तो अब वे सारी छोटी-छोटी परेशानियां उसके चारों ओर भूत बनकर मंडराने लगीं. घर की बिगड़ती परिस्थिति और मां का दिन प्रति दिन गिरता स्वास्थ्य देखकर जमीला बहुत कुंठित हो उठी. घर की बड़ी लड़की के नाते उस पर भी कुछ जिम्मेदारियां थी. मगर वह क्या करे. वह क्या कर सकती थी ?

इसी तरह कुछ महीने बीत गये. घर की हालत कैंसर के रोगी की तरह दिन प्रति दिन बिगड़ती ही जा रही थी और जब उसकी मां आठवीं बार गर्भवती हुई तो उसने दिल ही दिल में अपने बाप को बहुत कोसा. उसी बीच पड़ोस की आसू ख़ाला ने आकर बताया कि, एक छोटे से प्राइवेट स्कूल में उपशिक्षिका की आवश्यकता है. यदि जमीला बिटिया तैयार हो तो कल ही नौकरी पक्की हो सकती है. डेढ़ हज़ार रुपया महिना मिलेगा. आसू ख़ाला के पति उस स्कूल कमेटी के सदस्य थे. उन्होंने ही आसू ख़ाला को भेजा था. वे मौलवी साहब के घरेलू हालात से परिचित थे.

जमीला बहुत ख़ुश हुई, उसकी मां भी राजी हो गयीं. वे वर्षों से मौलवी साहब के पांच सौ रुपयों के अतिरिक्त अन्य किसी रक़म से परिचित नहीं थीं. अब एक दम से डेढ़ हज़ार रुपयों की बात सुनकर उन्होंने तुरंत हां कर दी. आसू ख़ाला ने कहा भी, "पहले अपने मियां से पूछ लो, कहीं वे मना न कर दें."

जमीला की मां ने झुंझलाकर कहा, "आज मैं उनकी एक न चलने दूंगी. देखती हूं, कैसे मना करते हैं. तुम अपने मियां से 'हां' कर दो बहन. जमीला जैसी मेरी वैसी तुम्हारी बच्ची है. अब इसके भले बुरे के बारे में आप लोग नहीं सोचेंगे तो और कौन सोचेगा ? कल सबेरे मैं जमीला को तैयार करवाकर तुम्हारे यहां भिजवा दूंगी."

इस तरह जमीला को डेढ़ हज़ार रुपये की टीचरशिप मिल गयी. जमीला बहुत ख़ुश थी. जमीला की मां संतुष्ट हुई. मौलवी साहब ने स्वभावनुसार विरोध प्रकट किया. मगर इस बार जमीला की मां चट्टान की तरह अडिग रही. उन्होंने अपने पति की एक नहीं चलने दी. और उनके सारे तर्क-वितर्कों को अपने आंसुओं से बेअसर कर दिया. मौलवी साहब भी थोड़े से वाद-विवाद के बाद चुप कर गये.

कदाचित उन्होंने सोचा हो, चलो अच्छा है, डेढ़ हज़ार रुपया प्रति मास घर में आया करेगा. क्या बुरा है. कुछ अपना ही बोझ हलका होगा.

इस प्रकार मौलवी जमालुद्दीन ने बे-मन जमीला को नौकरी करने की अनुमति दे दी. अब उसे नौकरी करते हुए भी ढाई वर्ष

सलाम बिन रज़ाक

१५ नवंबर १९४१, पनवेल (महाराष्ट्र)

लेखन : *कहानी-लेखन व नाट्य लेखन. अब तक सात पुस्तकें प्रकाशित. 'नंगी दोपहर का सिपाही,' मुहविर, 'कामधेनु', 'असरी हिंदी कहानियां,' 'शिकस्त बुतों के दर्मियान (कहानी संग्रह)'; 'माहीम की खाड़ी' (मराठी से उर्दू में अनुवाद);*
मराठी, हिंदी, तेलुगू, पंजाबी के अलावा कुछ कहानियां अंग्रेजी, नार्वेजियन व रूसी में भी अनूदित. अनेक नाटकों को पुरस्कार भी प्राप्त हुए. कुछ फिल्मों और टी.वी. धारावाहिकों का पटकथा लेखन.

सम्मान : *'साहित्य अकादमी पुरस्कार' (अनुवाद)-१९९८; 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' (रचनात्मक लेखन)-२००४; 'महाराष्ट्र उर्दू अकादमी पुरस्कार' (चार बार); 'उ. प्र. उर्दू अकादमी पुरस्कार' (दो बार); 'बिहार उर्दू अकादमी पुरस्कार' (दो बार) एवं 'कथा पुरस्कार' (२००१).*

विशेष : *मिडिल स्कूल छात्रवृति परीक्षा के लिए मार्ग दर्शिकाओं का संपादन व अनुवाद भी किया (उर्दू में). फिल्म राइटर्स एसोसिएशन के सक्रिय सदस्य.*

हो गये थे. मौलवी साहब ने तो अब दिन में घर आना ही छोड़ दिया था. अब वे अधिक आज़ादी से धर्म कार्य में लीन हो गये. वे सारा-सारा दिन मस्जिद में पड़े रहते. नमाज़ियों को हदीसें सुनाते और उन्हें दीन की बातें समझाते. मात्र कभी-कभी रात को पत्नी के पास सोने आ जाते थे. अन्यथा अब उनकी रातें प्रायः मस्जिद ही में गुज़रने लगी थीं. घर की सारी ज़िम्मेदारी अब जमीला पर थी. बेचारी मां तो इतनी थक गयी थी कि, बातें करने में भी हांपने लगती थी. मगर इस स्थिति में भी साजिदा पैदा हुई और डेढ़ साल बाद ही यह आख़िरी बच्ची - ख़ुदा जाने यह भी आख़िरी थी या....

जमीला बहुत बेज़ार हो गयी थी. मगर कुछ कहना-सुनना बेकार था. और क्या ऐसी बातें मां-बाप से कही जाती हैं. मौलवी साहब अब केवल दो बातों के लिए घर आते थे. भूख लगती तो रोटी खाने और जब वासना की भूख सताती तो पत्नी के साथ सोने

आज तो हद कर दी मौलवी साहब ने. दुपहर की नमाज़ के बाद आकर कहने लगे, "दिल्ली से एक बहुत बड़ी जमाअत आयी है. धर्म प्रचार के लिए. मैं उस जमाअत के साथ जा रहा हूं. तीन चिल्ले करके लौटूंगा." (एक चिल्ला चालीस दिन का होता है.)

जमीला की मां ने सिर पीट लिया और कहा, "चार महिने तक हम लोगों का क्या होगा ?"

"मदरसे वाले पांच सौ रुपये प्रति मास लाकर देंगे और फिर जमीला बिटिया तो है ही. दीन के कामों में थोड़ी बहुत तकलीफ़ तो होती ही है. तुम संसार के लिए इतनी चिंतित हो. परलोक की चिंता करो, जहां इस संसार के कर्मों का हिसाब-किताब होना है."

इस प्रकार मोटी-मोटी दलीलें देकर, अपनी अनपढ़ और सीधी सादी पत्नी को रोता-धोता छोड़, मौलवी साहब धर्म प्रचार के लिए चले गये. परलोक का हिसाब किताब ठीक करने.

जब शाम को जमीला स्कूल से लौटी, तब उसकी माँ ने रो-रो कर यह बात उसे बतायी.

जमीला क्या कहती, चुप-चाप खाट पर जाकर गिर गयी और आंखें बंद कर लीं. तभी उसने एकदम से फ़ैसला कर लिया कि, वह जल्द ही असलम से शादी कर लेगी. यदि मौलवी साहब रजामंद नहीं होते तो, "कोर्टशिप" ही सही.

असलम उसी के स्कूल में फिजिकल टीचर था. ऊंचा पूरा कद, सांवला रंग, मामूली नाक नक्शा, चेहरे पर हमेशा एक शालीन मुस्कराहट खेलती रहती. उसके साथ बातें करते वक़्त एक विचित्र गौरव का अनुभव होता. स्टाफ में सब उसकी इज़्ज़त करते थे.

पिछले वर्ष बाल दिवस के उत्सव में जमीला ने अपनी क्लास की नन्हीं नन्हीं बच्चियों का एक कोरस गीत तैयार किया था, जो बहुत पसंद किया गया. प्रधान अध्यापिका ने भी जमीला की ख़ूब तारीफ़ की.

दूसरे दिन वह अपने ऑफ पीरियड में टीचर्स रूम में बैठी एक चार्ट तैयार कर रही थी कि, असलम भीतर आया. उसने सबसे पहले उसे कल के सफल गीत पर बधाई देते हुए कहा, "आपका गीत तो जलसे की जान थी." उसने उत्तर में मुस्करा भर दिया और सिर झुकाकर पुनः अपने काम में व्यस्त हो गयी. मगर उसका ध्यान असलम की ओर ही था. वह सिगरेट सुलगा रहा था. कुछ क्षण तक कमरे में चुप्पी छाई रही फिर असलम की आवाज़ कमरे में उभरी.

"जमीला साहबा, मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं."

जमीला ने चौंककर गरदन उठायी, असलम दिवार पर लगे कैलंडर की ओर मुंह किये खड़ा था. उसने जमीला की ओर देखे बग़ैर कहा, "यदि मेरी मां या बहन होती तो मैं उन्हीं के द्वारा यह बात कहलवाता. मगर मेरा इस संसार में कोई नही हैं." क्या आप मेरी जीवन-साथी बनना पसंद करेंगी ?"

उस वक़्त असलम के हंसमुख चेहरे पर एक विचित्र सी दर्दभरी गंभीरता छायी हुई थी. जमीला ने कोई उत्तर नहीं दिया. मगर उसकी झुकी-झुकी पलकों और कांपते अधरों ने असलम से वह सब कुछ कह दिया, जो उसकी ज़बान न कह सकी. इस प्रकार कुछ क्षणों में ही उनके बीच के वे सारे फासले मिट गये, जिन्हें उन्होंने वर्षों तक का अंतर समझ रखा था.

यह बात उड़ती-उड़ती उसके माता-पिता के कानों तक भी पहुंची. पिछली ईद को असलम उनके घर भी आया था. ईद मिलने के बहाने. मां ने तो असलम को देखने के बाद हां कर दी. मगर मौलवी जमालुद्दीन टाल गये. कदाचित अब डेढ़ हज़ार रुपयों का मोह छोड़ना उनके लिए आसान नहीं था.

दिन गुज़रते गये और जमीला मौलवी साहब की अनुमति की प्रतीक्षा करती रही. मगर उन्होंने उस दिन के पश्चात् उसके विवाह का नाम तक नहीं लिया.

जमीला दिल ही दिल में अपने स्वार्थी और निठल्ले बाप पर झुंझलाती रही और जब दो मास पहले उसकी मां की दसवी संतान हुई तो उसे इतनी खीझ हो आयी कि, जी में आया इसी समय घर छोड़कर चल दे. मगर फिर अपनी कमज़ोर और बीमार मां और छोटे-छोटे भाई-बहनों की दीन-हीन सूरतें देखकर सब्र कर गयी.

उसने सोचा इसी बीच अवसर पाकर मां से बात करेगी. असलम ने तो कहा था कि, शादी के बाद भी तुम अपना सारा वेतन अपने माता-पिता ही को दे सकती हो. असलम उनकी आर्थिक परेशानियों से परिचित था. और स्वयं जमीला ने भी यही सोच रखा था कि, शादी के बाद जब तक रशीद पढ़-लिख कर कोई अच्छी सी नौकरी करने योग्य नही हो जाता, वह प्रतिमास नियमित रूप से अपनी मां के हाथ में रुपये लाकर रख दिया करेगी. मगर अब इस नयी परिस्थिति ने उसके मन और मस्तिष्क को अचानक विद्रोही और झुंझलाहट से भर दिया था.

आज उसे अपने बाप मौलवी जमालुद्दीन पर इतना क्रोध हो आया था कि, यदि उनसे उसका सामना होता तो वह पिता और बेटी के रिश्ते को भूलकर उन्हें ख़ूब खरी-खरी सुनाती. मगर वह अल्लाह का बंदा तो अल्लाह के रास्ते में निकल चुका था. यह सोचे बिना कि, मेरे पीछे मेरे बाल-बच्चे किसके सहारे जियेंगे. मौलवी साहब जो दुनिया भर को धर्म उपदेश देते फिरते हैं, क्या इतनी छोटी सी बात को नहीं समझ सकते ? क्या धर्म यही सिखाता है कि, घर में अंधेरा करके मस्जिद में चिराग़ जलाते फिरो ?

इसी प्रकार की तेज़ और तीक्ष्ण बातें उसके मस्तिष्क को कचोटती रही थीं. रात काफी बीत चुकी थी. मगर उसकी आंखों में नींद का कोसों पता नहीं था. इतने में उसकी मां की बग़ल

में सोयी हुई उसकी नवजात बहन अपनी बारीक आवाज़ में चिचियायी. फिर उसकी मां की नींद में डूबी हुई बुदबुदाहट सुनाई दी. शायद उसने अपना सूखा स्तन उसके मुंह में ठूंस दिया था. क्योंकि, बच्ची की चिचियाहट बंद हो गयी थी और अब सन्नाटे में चुसर चुसर की आवाज़ सुनाई दे रही थी.

जमीला ने करवट बदलकर आंखें बंद कर लीं. मगर आज उसकी आंखों में नींद कहां ? वह सोचने लगी. कल जब वह असलम को बतायेगी कि, वह आज ही उससे "सिविल मैरेज" करना चाहती है तो वह क्या जवाब देगा ? मगर वह यह बात इतने खुले ढंग से असलम से कह भी सकेगी ? कदाचित असलम भी उसकी इस भावुकता को पसंद न करें. क्योंकि, वह तो उसके माता पिता की रज़ामंदी के पश्चात इत्मीनान और नियमानुसार विवाह करना चाहता है. वह यह तो चाहता था कि, शीघ्रतिशीघ्र उनकी शादी हो जाये. मगर वह इसके लिए कोई ऐसा क़दम उठने को तैयार नहीं था, जिसके लिए उन्हें बाद में किसी के सामने शर्मिंदा होना पड़ता.

कैसे मज़बूत व्यक्तित्व का मालिक है असलम. तुम मुझे कितना चाहते हो. मेरे रूखे फीके जीवन में एक तुम्हारे प्यार ही का तो रस है, जो मुझे जीवित रखे हुए है. वरना मैं कब की घुट के मर चुकी होती. कैसी कड़ी धूप है मेरे चारों ओर. यदि तुम्हारे प्यार की छांव न होती तो मैं कहां जाती ?

अचानक साजिदा ने नींद में अपने दोनों नन्हें-नन्हें हाथ उसके गले में डाल दिये उसने उसे अपने वक्ष से चिमटा लिया और साथ ही उसके पेशानी चूम ली. साजिदा नींद में तनिक कुनमनाई फिर सहज हो गयी. उसने नजर उठाकर अपने सभी सोते हुए छोटे-छोटे भाई-बहनों की ओर देखा जो कमसिनी की गहरी नींद में डूबे हुए थे. उसने सोचा कल जब वह इनके पास न रहेगी तब भी क्या ये इस निश्चिंतता के साथ सो सकेंगे ? कौन इन्हें खाना खिलायेगा ? कौन इनका बिस्तर बिछायेगा ? कौन इन्हें सोने से पहले जिन्न और परियों की काहनियां सुनायेगा ? नन्हीं साजिदा किसके गले में बाहें डालकर सोयेगी ? रशीद को होमवर्क कौन करायेगा ? यह सब किसको दीदी कहकर पुकारेंगे ?

उसके हृदय में हूक सी उठी. उसे लगा यदि कल वह चली गयी तो-ये सारे बच्चे अनाथ हो जायेंगे. उसकी आंखों से अकस्मात् ही आंसू बहने लगे. और बहते रहे.

जाने वह कितनी देर तक इसी तरह आंसू बहाती पड़ी रही. जब मन का बोझ कुछ कम हुआ तो उसने अपने मैले आंचल से अपने आंसू पोंछे और एक ठंडी आह भरकर करवट बदली. उसे लगा उन आंसुओं के प्रवाह में उसके मन का रोष भी धुल गया है. और शायद वह कल भी असलम से विवाह की बात न कह सकेगी. उसे अपने पिता के प्रचार से लौटने तक यहीं रहना पड़ेगा. अपने छोटे छोटे भाई-बहनों के पास. वह अपनी दुखियारी मां को अधिक दुःख न दे सकेगी. वह असलम से कहेगी कि और चार महिने तक उसकी प्रतीक्षा करे. केवल चार महिने. उसके बाप के घर लौटने तक. फिर वह हमेशा-हमेशा के लिए उसके पास चली आयेगी. उसे असलम पर पूर्ण विश्वास था. वह अवश्य ही उसकी यह बात भी मान लेगा.

अचानक उसने अनुभव किया कि, इस नये निर्णय से उसका मन एक प्रकार की शांति से भर गया है. वह तनावपूर्ण स्थिति समाप्त हो गयी है. जो सांझ से उसकी नस-नस में व्याप्त गयी थी. जैसे उसका आस्तित्व कोहरे की एक मोटी चादर में लिपटा हुआ था और अब अचानक वह चादर बीच-बीच से मसकने लगी हो. उसकी पलकें भी नींद के दबाव से बोझिल हो रही थी.

११/९, एल. आई. जी. कॉलोनी,
कुर्ला (प.), मुंबई-४०० ०७०

ग़ज़लें

छंदराज

जब सियासी सोच ही अलगाववादी हो गयी,
सत्य को दामुल अहिंसा की मुनादी हो गयी ।
मानवोचित आचरण के दिन कभी के ढल गये,
दूसरी तहज़ीब पहली की तमादी हो गयी ।
नेकियां करिए नदी में डालिए चल दीजिए,
दुनिया ही एहसांफरामोशी की आदी हो गयी ।
दिल बहकना बंद आंखों का फिसलना बंद है,
आजकल अपनी तबीयत सादा-सादी हो गयी ।
मेरे सूरज का उजाला रास्ते में गुम हुआ,
रात जुल्मत की घनेरी बेमियादी हो गयी ।

❖ ❖ ❖

यहां है तंगदिली दिल उदार मत करना,
किसी को यार या दुश्मन क़रार मत करना ।
कहा गया है उसे दर किनार मत करना,
नदी में रह के मगर से तो रार मत करना ।
हवा तो बांस-वनों में बजा गयी सीटी,
खुशी में पर को परिंदो सितार मत करना ।
हिरन-सी सहमी-डरी अपनी तमन्ना ठहरी,
कहीं कुलाचें भरे तो शिकार मत करना ।
चला-चली की घड़ी में सलाम है सबको,
हमारी नेकी-बदी पर विचार मत करना ।

बेकापुर, मुंगेर (बिहार) ८११२०१

आमने / सामने

मेरी कहानी, सबकी कहानी

✍ सलाम बिन रज़ाक

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रवसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन और प्रकाश श्रीवास्तव से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है सलाम बिन रज़ाक की आत्मरचना.)

पचास पचपन बरस का ज़माना बीत गया. वह रात एक डरावने ख़्वाब की तरह आज भी मेरी याद का हिस्सा है. मेरी उम्र छः सात बरस की रही होगी. बंबई से चंद कोस के फासले पर पनवेल के एक छोटे से मकान के एक छोटे से कमरे में मेरी मां अपनी ज़िंदगी की आख़िरी घड़ियां गिन रही थी. ख़ानदान की चार पांच औरतों के साथ मुहल्ले की भी कुछ औरतें उसके सिरहाने बैठी उसके मुंह में पानी की बूंदें टपका रही थीं. मेरी मां की सांसे तेज़ तेज़ चल रही थी. वह तो मुझे बहुत बाद में मालूम हुआ कि उस स्थिति को 'मृत्यु यातना' कहते हैं.

मैं कमरे के एक कोने में बैठ घबराया घबराया सा यह सब देख रहा था. मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि अचानक मेरी मां को क्या हो गया है. वक़्त गुज़रता जा रहा था. औरतों की फुसफुसाहट, मक्खियों की भिनभिनाहट की तरह जारी थी. पता नहीं कब मेरी आंख लग गयी और मैं वहीं कमरे के एक कोने में लुढ़क कर सो गया. न जाने मैं कितनी देर तक सोता रहा. अचानक औरतों के चीख़ने चिल्लाने से मेरी आंख खुल गयी. घर में हाहाकार मचा हुआ था. सबके साथ मैं भी रोने लग गया. मेरी मां मर चुकी थी.

मेरी मां उस मोहल्ले में अकेली महिला थीं जो पढ़ना जानती थीं. मोहल्ले की स्त्रियां हर गुरुवार को हमारे घर में इकट्ठा होतीं और मेरी मां ग्यारहवीं, मोहर्रम आदि की मज़लिसों के अतिरिक्त नूर नामा, अहद नामा, बीबी मरियम का क़िस्सा, दाई हलीमा का क़िस्सा, जनाब सय्यदा की कहानी जैसी किताबें पढ़ कर सुनाया करती थीं. मैं भी मां के पहलू से लग कर वे क़िस्से सुना करता था. क़िस्से सुनते-सुनते, क़िस्से पढ़ने का चस्का पड़ा. जो किताब हाथ लगती पढ़ डालता और बाद में नमक मिर्च लगा कर दोस्तों को सुनाया करता. उन्हें भी ख़ूब मज़ा आता. उस ज़माने में मनोरंजन के साधन अलग थे. गिल्ली डंडा, क्रिकेट और कबड्डी जैसे खेलों के साथ पास के जंगलों, बागों में भटकना, कैरियां और जामुन तोड़ना, फंदा लगाकर गिरगट पकड़ना, छड़ी से मछली का शिकार करना, तालाब या नदी में नहाना, भैंसों की पीठ पर सवारी करना और गधे की दुम में कनस्तर बांधना हम दोस्तों के दिलचस्प खेल थे. उन गतिविधियों में अब मेरी क़िस्सागोई भी शामिल हो गयी थी.

मां के देहांत के बाद घर की हर चीज़ बिखर सी गयी. एक खाला और फूफी थीं. जल्द ही उनकी शादियां हो गयीं. दादा का भी देहांत हो गया. अब्बा ने अम्मी को ज़िंदगी में भी कोई सुख नहीं दिया था. मां के मरने के बाद तो वे हमारी ओर से बिल्कुल ही उदासीन हो गये. मेरे दो छोटे भाई थे. हमारी रिश्ते की एक फूफी ने घरों में पानी भर के हमारी परवरिश की और हम ज्यों त्यों बड़े होने लगे.

मुझे कहानियां पढ़ने और क़िस्से सुनाने का शौक़ तो था ही. पांचवी, छठी तक आते आते तुकबंदी का चस्का भी पड़ गया. मुझे याद है एक बार हमारी किसी शरारत पर हमारे टीचर ने तमाम लड़कों को क्लास से बाहर निकाल दिया. हम एक घंटे तक धूप में क्लास से बाहर खड़े रहे. इस बीच मैंने एक प्रार्थना पत्र लिखा जो छंदबद्ध था. सब लड़कों ने उस पर हस्ताक्षर किये और वह याचिका लेकर टीचर के पास पहुंचे. ज़ाहिर है प्रार्थना पत्र पढ़कर टीचर का गुस्सा हवा हो गया और उन्होंने चंद उपदेशों के उपरांत हमें क्लास में बैठने की अनुमति दे दी. उस प्रार्थना पत्र

का प्रभाव यह हुआ कि मैं अचानक पूरी क्लास का हीरो बन गया और शिक्षक भी मुझ पर बहुत मेहरबान हो गये. उसके बाद वह अक्सर कभी स्वाधीनता दिवस पर तथा प्रजातंत्र दिवस पर तो कभी किसी मेहमान के आने पर मुझसे स्वागत गीत लिखवाते और मेहमान से बड़े गर्व के साथ मेरा परिचय क़रवाते. सातवीं कक्षा तक वह मेरे शिक्षक रहे. सातवीं कक्षा में मैं पूरे जिले में प्रथम नंबर से पास हुआ. मुझे सरकार की ओर से स्कॉलरशिप मिलने लगा जो महीना दो रुपये के हिसाब से तीन बरस तक मिलता रहा.

सातवीं पास होने के बाद सेकंडरी शिक्षा के लिए पनवेल में कोई उर्दू मीडियम हाईस्कूल नहीं था. मजबूरन मुझे और मेरे कुछ साथियों को मराठी माध्यम स्कूल में दाख़ला लेना पड़ा. मराठी स्कूल में दाख़िला होने के बाद हालात एकदम बदल गये. मराठी की मुझे जानकारी अवश्य थी मगर उर्दू मीडियम का सा आत्मविश्वास और निपुणता मराठी मीडियम में पैदा नहीं कर सका. बस किसी तरह वार्षिक परीक्षा में सफल हो जाता था. यहीं मुझे मराठी साहित्य, विशेषकर मराठी कहानी में दिलचस्पी पैदा हुई. हमारी नवीं कक्षा की पुस्तक में वि. स. खांडेकर की एक कहानी 'आई' थी. मैंने उसका उर्दू में 'मां' के नाम से अनुवाद कर दिया. वह उर्दू दैनिक 'इन्क़लाब' में प्रकाशित हुई. यह मेरी फिक्शन में पहली कहानी थी जो अनुवाद के रूप में छपी. इसी बीच मेरी कुछ कविताएं इधर-उधर पत्रिकाओं में छपती रहीं. उनके प्रकाशन से मैं बहुत ख़ुश होता था. मगर उस छोटी सी बस्ती में मेरी रचनाओं की दाद देने वाला कोई नहीं था. न घर में, न बाहर.

पनवेल में क़वालियां तो बहुत होती थीं मगर मुशायरों का कोई चलन नहीं था. मैं अपने दो एक साथियों के साथ ट्रकों पर लदे बोरों पर बैठ कर बंबई के रंगभवन तथा साबूसिद्दीक़ी ग्राऊंड में इन्डोपाक मुशायरे सुनने आया करता था. प्रगतिशील शायरों में सरदार जाफरी, साहिर लुधियानवी, मजरूह सुलतानपुरी हमारे हीरो हुआ करते थे. जब फिक्शन पढ़ने का शौक़ हुआ तो कृश्न चंदर आयडियल बन गये.

यद्यपि ग़रीबी और दरिद्रता परछाईं की तरह साथ साथ चल रहे थे, लेकिन मैं अब उम्र की उस मंज़िल पर था जब दिल के ज़ख़्म फूलों की तरह महकने लगते और आंसू मोतियों में ढल जाते हैं. सुबह का सूरज किसी की दीद का पैग़ाम लेकर आता है और रातों की पुरअसरार तनहाई में पाज़ेब की झंकार सुनाई देती है.

वह लड़की दो चार मकान छोड़कर मेरे पड़ोस में ही रहती थी. बरसों से उसे स्कूल आते जाते या दूसरी लड़कियों के साथ अक्कड़ बक्कड़, फुगड़ी या आंख मिचौली खेलते देखता रहता था. एक दिन बाहर बरसात हो रही थी और मैं अपनी खोली की खिड़की में रिमझिम रिमझिम बारिश के मज़े ले रहा था कि अचानक वह नज़र आ गयी. सर से पांव तक पानी में सराबोर बालों से पानी के क़तरे टपक रहे थे और कपड़े भीग कर बदन से चिपक गये थे. तब अचानक मैंने महसूस किया कि यह तो वह लड़की नहीं है जिसे रोज़ बस्ता लेकर स्कूल आते जाते मैं देखा करता था. वह अचानक बड़ी हो गयी थी. उस दिन के बाद से हर पल कल्पना के क्षितिज पर एक धमक सी तनी रहती.

पनवेल में साहित्यिक वातावरण नहीं था फिर यह लिखने की लत मुझे क्यों और कैसे पड़ी ? इसका कोई सही उत्तर मेरे पास नही है. अलबत्ता इस संबंध में एक चीनी कहावत अवश्य याद आती है - "परिंदे इस लिए नहीं गाते हैं कि उनके पास गाने का कोई औचित्य है. परिंदे इस लिए गाते हैं कि उनके पास गीत हैं."

शायद मैं भी इस लिए लिखता हूं कि मेरे पास लिखने के लिए कुछ है. यद्यपि लिखना एक बौद्धिक क्रिया है परंतु लिखने की कामना लेखक के अवचेतन की गहराइयों में परवरिश पाती रहती है जो उचित समय पर शब्दों का आवरण धारण कर काग़ज़ पर उद्धृत होती है. बहुधा हमें ख़ुद पता नहीं चलता कि हम ने क्यों और कब लिखना शुरू किया. मुझे बचपन की एक घटना याद आती है. मैं अभी छोटा था, तैरना नहीं जानता था मगर तालाब के किनारे बैठकर अन्य बच्चों को तैरते हुए देखने में मुझे बड़ा मज़ा आता था. पता नहीं कब एक दिन अचानक किसी ने मुझे पीछे से धक्का दे दिया. मैं पानी में गिर कर ग़ोते खाने लगा मगर डूबने से बचने के लिए बेइरादा हाथ पांव भी चलाता रहा. अंततः ज्यों त्यों किनारे पर आ लगा. मगर उसके बाद मैंने महसूस किया कि मुझमें आश्चर्यजनक तबदीली आ गयी है. मेरे मन से गहरे पानी का डर जाता रहा और मैं भी धीरे-धीरे अन्य बच्चों के साथ तैरने लग गया. अब ग़ौर करता हूं कि वह कौन था जिसने मुझे पानी में धक्का दिया था तो लगता है वह कोई और नहीं मेरा ही कोई बहरूप था. पढ़ने का शौक़ जारी था मगर पनवेल में न कोई वाचनालय था, न मेरी इतनी हैसियत थी कि पुस्तकें ख़रीद कर पढ़ सकता. बस मांगे तांगे से अपने अध्ययन की प्यास बुझाता रहा. जो पुस्तक जिससे मिल जाती पढ़ डालता. दास्तानों और उपन्यासों को पढ़ते-पढ़ते मेरे भीतर भी गद्य में कुछ लिखने की तमन्ना जागी, अतः तुकबंदी के साथ कहानी की ओर प्रवृत्त हुआ.

उर्दू में मेरी पहली कहानी १९६२ में 'शायर' में छपी थी. उसके बाद हालात कुछ ऐसे पैदा हुए कि छः सात बरस तक मैं कुछ लिख ही नहीं सका. वह भीगी-भीगी सी लड़की कहीं और ब्याह दी गयी. एस. एस. सी. पास होने के बाद टीचर की नौकरी कर ली. इसी बीच मेरी शादी हो गयी और मैं गृहस्थाश्रम में दाख़िल हो गया. पनवेल से निकल कर बंबई के उपनगर कुर्ला में टीन की एक खोली किराये पर लेकर रहने लगा. मेरी कहानियां 'समर्पण', 'परस्पर', 'हत्या-आत्महत्या', 'एक तिकोनी कहानी'

'लक्ष्य', 'बनारसी साड़ी' और ऐसे कई अफ़सानों के पात्रों से मेरा इसी झुग्गी झोपड़ी में साक्षात हुआ था.

उसी ज़माने में मैंने उर्दू के साथ हिंदी में भी लिखना शुरू कर दिया. १९६९ में हिंदी में मेरी पहली कहानी 'दहशत', 'नयी कहानियां' में छपी जिसे अमृत राय संपादित करते थे. पहली कहानी पर ही इतने पत्र मिले कि मैं हैरान रह गया. हौसला बढ़ा और मैं हिंदी में भी निरंतर छपने लगा. 'कहानी', 'नयी कहानियां', 'धर्मयुग', 'कहानी कार', 'सप्तांशु', 'समकालीन भारतीय साहित्य' आदि में मेरी कहानियां छपने लगीं. हिंदी के पाठकों से भी मुझे ढेर सारा प्रेम मिला. १९७७ में उर्दू में मेरा पहला कहानी संग्रह छपा जिसे हाथों हाथ लिया गया. पत्रिकाओं में समीक्षाएं छपीं, पाठकों ने पत्र लिखे. मैं खुश था मगर भीतर से एक अनजाना खौफ़ भी मुझे घेरे हुए था, मुझे लगा मैं एक लंबी पदयात्रा पर निकला हूं. जिसका कोई अंत नहीं. लोग दाद दे रहे हैं मगर सर पर धूप की चादर भी तनी है. गले में फूल मालाएं हैं मगर तलुओं में छाले पड़े हैं. और आगे रास्ता कांटों भरा है.

पीछे मुड़ कर देखने का सवाल नहीं था. अगर मैं ऐसा करता तो किसी जादू के ज़ोर से पत्थर का हो जाता. इस ख़ौफ़ से मैं चलता रहा और आज भी निरंतर चल रहा हूं. मेरा सफ़र जारी है. मैं इस सफ़र में पल-पल टूटता हूं. कण-कण बिखरता हूं. कहानी लिखना मेरे लिए अपने इसी किरची-किरची अस्तित्व का समेटने का नाम है, जिसके माध्यम से मैं स्वयं को परिस्थितियों के दबाव से आज़ाद करता रहता हूं. मेरी कहानी वास्तव में मेरी मुक्ति का माध्यम है.

कहते हैं - सीपी के सीने में जब कोई कण गड़ जाता है तो वह उसके भीतर टीस पैदा करने लगता है, सीपी उसकी कसक को कम करने के लिए अपने भीतर एक प्रकार की राल उत्पन्न करती है और राल को उस फंसे हुए कण के गिर्द लपेटती रहती है, धीरे-धीरे कण पर राल की तह जमने लगती है फिर एक समय ऐसा आ जाता है कि वह कण राल से मिल कर मोती बन जाता है. कहानी लिखना भी असल में अपने अंदर फंसे किसी ख़्याल की चुभन से मुक्ति पाने की क्रिया है, यह ख़याल ही की कसक है जो कथाकार के जिगर में गड़ते गड़ते अंततः कहानी का रूप धारण कर लेती है.

मेरी हर कहानी मेरे माहौल की पैदावार है, मैं अपनी जात के आईने में अपने आस-पास के लोगों की गतिविधियों, हरकतों और क्रिया-प्रतिक्रियाओं का निरीक्षण करता रहता हूं. उनकी मोहब्बतें, उनकी नफ़रतें, उनकी शराफ़त, उनकी कमीनगी, उनकी बग़ावत, उनकी कायरता. उनके सुख-दुख, पीड़ा, क्रोध राग अनुराग, सब मेरे ही एहसास के अलग-अलग प्रतिबिंब हैं.

मैं एक आम आदमी का कथाकार हूं. मगर यह आम आदमी कमज़ोर आदमी नहीं है. मेरे पात्र ऐसे दुर्मर लोग हैं जो दिन भर में बीसियों बार टूटते हैं, टूट कर बिखरते हैं, मगर दूसरी सुबह अपने बिस्तर से ज्यों के त्यों उठते हैं. वह रोज़ हारते हैं मगर जीने का हौसला नहीं हारते. मेरी कहानी नारा नहीं चीख़ है. ऐसी चीख़ जो प्रायः गले ही में घुट कर रह जाती है. ये वे बदनसीब लोग हैं जिन्हें परिस्थितियों ने अपने चक्रव्यूह में जकड़ रखा है, वे इस चक्रव्यूह से निकलना चाहते हैं मगर अभिमन्यु की तरह चक्रव्यूह को तोड़कर उससे बाहर निकलने का मंत्र नहीं जानते. उन्हें बाहर निकलने का मंत्र सिर्फ़ अर्जुन बता सकता है मगर मेरे युग में कोई अर्जुन नहीं सिर्फ़ शिखंडी हैं.

आज से पच्चीस बीस बरस पहले समाज में साहित्य का महत्व और आवश्यकता एक मानी हुई सच्चाई थी. हमारे शायरों के अशआर और लेखकों के अफ़साने घरों में चर्चा का विषय हुआ करते थे. उनके नाम परिवार के नामों का अंग होते थे. मगर आज बाज़ारवाद, मास मीडिया, लोकप्रिय संस्कृति ने साहित्य और कला की सूरत ही बदल दी है. आज नयी नस्ल की ज़बान पर फिल्मों के एक्टर, विभिन्न खेलों के खिलाड़ी, राजनीतिज्ञ, चुटकुले बाज़, भांड और नाचने गाने वालों के नामों की चर्चा होती है, लोग रेडियो पर या स्क्रीन पर शायर का कलाम सुनते हैं, मगर दाद सिंगर को देते हैं. ग़ज़ल के शौक़ीनों में बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि "यह धुंआ सा कहां से उठता है." ग़ज़ल मीर तकी 'मीर' की है. वरना साधारणतः लोग बाग समझते हैं इसे मेहंदी हसन ने गाया है अतः यह उन्हीं की रचना है. आज का युग 'परफार्मेंस आर्ट' का युग है. छपी हुई कहानियां पढ़ना और उन पर मग़ज़-पच्ची करना नये समाज में आउट डेटेड चीज़ समझी जाती है. आज कहानी पढ़ने की बजाये देखने की चीज़ हो गयी है. इस लिए आज के समाज में छपी हुई कहानी के महत्व को शक की नज़रों से देखा जाने लगा है. लिखित साहित्य के सामने सिनेमा, टी.वी. और कंप्यूटर एक चैलेंज के रूप में मौजूद हैं. सायंस, टेक्नॉलॉजी, इन्टरनेट और सैटेलाइट के इस दौर में पहला प्रश्न जो मस्तिष्क में आता है वह यह है कि आज समाज को कहानी की आवश्यकता है भी या नहीं. मास मीडिया ने नयी नस्ल की रुचियों और अभिरुचियों को इस क़दर पद-दलित कर दिया है कि सिर्फ़ कहानी ही नहीं संपूर्ण साहित्य उसके नज़दीक फ़िज़ूल की चीज़ हो कर रह गया है.

ख़ैर परिस्थिति जो भी हो मैं इतना जानता हूं कि समाज को कहानी की आवश्यकता हो न हो मगर कहानी मेरी आवश्यकता निस्संदेह बनी रहेगी.

११/९, एल. आई. जी. कॉलोनी,
कुर्ला (प.), मुंबई - ४०० ०७०.

सागर / सीपी

'विश्वास और मूल्यों के प्रति आस्था ही हमारी मूल्यवत्ता होनी चाहिए !'

- रामदरश मिश्र

(प्रसिद्ध लेखक रामदरश मिश्र से सूर्यदीन यादव की बेबाक बातचीत)

● **आपकी आधुनिक हिंदी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ नैबंधिक कृति में 'रामायण की प्रासंगिकता' निबंध के भाव तुलसी साहित्य से भिन्न एवं आधुनिक हैं या उन्हीं की विरासत हैं ?**

रामायण बाल्मीकि ने लिखी थी उसके बाद तमाम कवियों ने तुलसी या हर कथाकार ने अपने ढंग से कहा. तुलसीदास ने इस कथा को लिखा तो इन्होंने अपने युग और अपनी प्रकृति के दृष्टिकोण से कुछ नयापन उपस्थित किया. यह सहज प्रक्रिया है कि कोई भी प्रतिभाशाली कवि जब किसी कृति की पूरी कथा को लेता है, तो उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं करता. ज्यों का त्यों प्रस्तुत करे तो उसकी आवश्यकता क्या है ? इसलिए हर प्रतिभाशाली कवि अपने समय, अपने संस्कार, अपनी दृष्टि के अनुसार उस पूरी कथा में नवोन्मेष भरता है. तुलसीदास ने रामकथा को ही बाल्मीकि से नहीं लिया, बल्कि संपृक्त काल की बहुतेरी सूक्तियों को भी ले लिया. इसके बावजूद तुलसीदास तुलसीदास हैं. यानी नवसर्जक, उन्होंने अनेक पारंपरिक वस्तुओं को अपनाकर अपने स्वभाव और दृष्टि के अनुसार नये रंग में ढाल दिया. आज का, किसी नये युग का साहित्यकार जब प्राचीन साहित्य को पढ़ता है, तब वह पहचानना चाहता है कि वह प्राचीन साहित्य उसके लिए यानी, उसके समय के लिए कितना प्रासंगिक है ? कबीर, तुलसी या किसी बड़े कवि ने हमारे समय को ध्यान में रखकर नहीं लिखा है. यह तो हम देखना चाहते हैं कि उन्होंने जो लिखा है, वह हमारे समय से कितना जुड़ता है. आज का लेखक प्रमुख रूप से लोकजीवन के यथार्थ पर बल देता है. अभिजात्य और उच्च जमात आज के साहित्य के लिए प्रासंगिक नहीं रही. आज का साहित्यकार आमजन की बात करता है. तुलसीदास ने रामकथा को लोकजीवन से जितना जोड़ा उतना अन्य किसी कवि ने नहीं. लोकजीवन के यथार्थ के अनंत आयाम अनेक माध्यमों से तुलसीदास के रामचरित मानस में खुलते हैं और उनकी रामकथा लोककथा बन जाती है. लोककथा बनाने के लिए ही तुलसीदास ने मानस को अवधी में लिखा. हम आज तुलसीदास की आध्यात्मिकता या तुलसी के आध्यात्म दर्शन या अलौकिक चमत्कारों में विश्वास भले ही न करें, लेकिन जो उनकी लोकयात्रा है वह हमें आज भी अपनी लगती है. इसलिए वह एक क्लासिक कृति है; जिसके प्रभाव की गूंज काल की सीमा पार कर अनंत दूरियों में फैलती रहेगी.

● **आपकी नैबंधिक कृति 'कितने बजे हैं' ? में 'होरी के पूत हीरो' निबंध क्या गोदान के मुख्य पात्र होरी (जो चुपचाप अन्यायों, ज़ुल्मों को सहता है) पर व्यंग्य है या आधुनिक नयी युवा पीढ़ी के लिए चेतना ?**

व्यंग्य नहीं. होरी के दर्द को उभारा गया है. और यह भी कहना चाहा गया है कि होरी के वर्ग में जो नयी पीढ़ियां आ रही हैं, उनमें विद्रोह का जो सही स्वर उभरना चाहिए नहीं उभर रहा है, बल्कि वे भी मध्यमवर्गीय नयी पीढ़ियों की तरह शहरी चाक चिक और झूठी रंगीनी में कहीं अपने को लिप्त कर रही हैं. वे भी गांव से ऊर्जा ग्रहण करने के स्थान पर उसकी उपेक्षा कर रहे हैं.

● **'रामदरश मिश्र के रचनात्मक निबंध : आधुनिक सर्जनात्मक साहित्य की अनिवार्यता' इस विषय पर शोधकार्य किया जाय तो एक नवीन साहित्यिक सामग्री साहित्य जगत को उपलब्ध होगी, इसके बारे में आप क्या मानते हैं ?**

मेरे निबंध तो आधुनिक ही कहे जायेंगे. मेरे निबंधों के सारे विषय आज के ही हैं, और उन विषयों की वस्तु को रूपांतरित करने की दृष्टि भी आज की है. मेरी दृष्टि को मार्क्सवादी कहिए, वह सामान्य मनुष्यता को बेहद प्यार करती है और उसकी ऊर्जा को, उसके विश्वास को, उसके सौंदर्य को रेखांकित करना चाहती है. बहुत से निबंधकारों ने प्राचीन विषय लिये हैं, लेकिन जो सही अर्थ में सर्जक हैं, उन्होंने प्राचीन विषयों को अपने समय के अनुसार नया रूप दिया है, नयी चेतना दी है. इसलिए वे भी परमाधुनिक हैं, लेकिन मेरे निबंध तो विषय और दृष्टि दोनों ही दृष्टियों से आज के ही हैं.

● **आपके 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' उपन्यासों को लेकर कोई दिग्दर्शक टी. वी. सीरियल बनाने के लिए मांग कर रहा था, लेकिन आपने शायद स्वीकृति नहीं दी थी. क्यों ? आपको ऐसा लगता है कि कृतियों के सीरियल बनाकर दूरदर्शन वाले और प्राइवेट दिग्दर्शक भी लेखकों का शोषण करते हैं ?**

पहले पहल इन उपन्यासों की मांग जरूर हुई लेकिन बात बनी नहीं. यानी आगे प्रगति नहीं हुई. इन पर सीरियल बने होते तो मैं देखता कि इन उपन्यासों की मूल चेतना के साथ कोई अनुचित

छेड़-छाड़ न हो. यह सही है कि दृश्य मीडिया की अपनी भाषा होती है, अपनी शैली होती है, और वह जब किसी साहित्य को अपने में रूपांतरित करता है तो बदलाव आ जाना स्वाभाविक है. इसलिए इतनी छूट तो देनी ही चाहिए और मैं देता. वैसे अनुभव यही कहता है कि दृश्य मीडिया वालों ने साहित्य के साथ प्रायः अन्याय ही किया है.

● **गुजरात में बहुत से साहित्यकार आये, गये, रहे. आपकी तरह वे गुजरात को अपना घर नहीं कह सके. क्यों ? आप में ऐसा क्या है कि गुजरात के लोग आपको अधिक मान-सम्मान देते हैं ?**

एक बार मैंने भोलाभाई से कहा था कि गुजरात ने (मुझे) बहुत प्यार दिया है. तो उन्होंने पलटकर कहा कि 'आपने भी तो गुजरात को कम प्यार नहीं दिया है. इतने लोग यहां से, उत्तर भारत से, गुजरात गये, आख़िर उन्हें वह प्यार क्यों नहीं मिला जो आपको मिला.' भोलाभाई पटेल मेरे प्रिय शिष्य रहे हैं. इसलिए उनके कथन में मेरे प्रति विशेष पक्षपात हो सकता है, इसलिए सच है कि गुजरात मुझे बहुत प्यारा लगता है. मैं बहुत यात्रा भीरू व्यक्ति हूं. मुश्किल से ही कहीं जाता हूं. लेकिन जब गुजरात से बुलावा आता है तो मैं अपने को रोक नहीं पाता और निश्चय ही वहां जाता हूं. गुजरात के आठ वर्षों की अवधि में मुझे जितने प्रिय शिष्य मिले उतने तो दिल्ली के चालीस वर्षों की अवधि में नहीं मिले. और इतना ही नहीं, वहां के शिष्यों के शिष्य और उनके शिष्य भी मुझे बहुत प्यार देते हैं. बाकी ऐसा क्या है, इसका सही उत्तर तो गुजरात के लोग ही दे सकते हैं.

● **'अपने लोग' उपन्यास के पागल पात्र उमेश का सृजन आप कैसे कर पाये. क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि वैसे अनेक प्रेमी होंगे जो अपने दर्द को दबाये हुए जी रहे हैं, पर व्यक्त नहीं कर पाते हैं ?**

वैसे कहा जाता है कि पागल पात्र के पीछे कोई कुंठा होती है. वह कुंठा यौन कुंठा भी हो सकती है, अर्थ कुंठा भी हो सकती है, पद कुंठा भी हो सकती है और कई बार शारीरिक बनावट के नाते भी पागलपन सवार हो जाता है, सभी तरह के पागल मेरे संपर्क में आये हैं. उमेश मेरा बहुत अंतरंग दोस्त रहा है. हमने बहुत दिनों तक अंतरंग सहयात्राएं की हैं और मैं उसके जीवन के अंतरंग पहलुओं से धीरे-धीरे परिचित होता गया हूं. मेरा मित्र ऊपर से बड़ा नैतिकवादी और सशक्त चरित्रवाला मेधावी व्यक्ति रहा है. वह अपने को ऊपर से बहुत कसे हुए था, लेकिन धीरे-धीरे ज्ञात होता गया कि उसका वैवाहिक जीवन बहुत असुंदर था. बचपन से धोखे से एक असुंदर विकलांग लड़की से उसका विवाह कर दिया गया था. एक ओर उसकी यह भीतरी यौन पीड़ा थी, दूसरी ओर सामाजिक रूप से उसकी सशक्त यौन नैतिकता थी. वह दोनों के बीच अदृश्य भाव से पिस रहा था. यह बात मुझे धीरे-धीरे ज्ञात होती चली गयी. एक दूसरी बात थी कि वह बहुत मेधावी कवि, वक्ता और विद्वान था, लेकिन वह क्लर्क था. और जब एक प्रोन्नति का अवसर आया तो एक चापलूस, अयोग्य क्लर्क ने उस प्रोन्नति को हथिया लिया और उमेश जहां का तहां रह गया. मुझे लगता है कि उसे लगता रहा कि मैं इतना योग्य व्यक्ति हूं और मात्र क्लर्क बना हूं. मुझे लगता है कि ये दोनों प्रकार की कुंठाएं उसके भीतर चलती रहीं और वह पागल हो गया तो मुझे लगा कि ये दोनों कुंठाएं कितने गहरे उसके भीतर धंसी थी. इसी आधार पर मैंने इसे रचा और माधवी की कल्पना की. माधवी संभवतः उसका मानसिक सपना थी, जिसकी मैंने कल्पना की है.

● **आपने अपनी लाडली बेटी स्मिता के जन्मदिन पर कविता लिखी है. अन्य संतानों के प्रति भी लिखना चाहिए था पर... अन्य संतानें भी तो आपकी लाडली संतानें हैं, फिर उसे दुर्भाव माने या... ?**

मैंने हेमंत पर बहुत कविताएं लिखी हैं. कहानियां विवेक पर भी लिखी हैं. शशांक भी मेरी रचनाओं में आये हैं. यहां तक की मेरे पौत्र-पौत्रियां भी मेरी रचना में उपस्थित हैं. किसके बारे में किस विधा में लिखता हूं यह अलग बात है. इसलिए पक्षपात का यहां कोई मतलब नहीं है. फिर इसके साथ एक भावना भी जुड़ी हुई है कि लड़की होकर भी यह अकेले बहुत संघर्ष कर रही है, जो लड़कियों के लिए स्पृहणीय हो सकता है, तो शायद यह कविता (जन्मदिन पर) इस संदर्भ में भी अपना महत्व रेखांकित कर रही हो.

● **'आम के पत्ते' कृति की शीर्षस्थ कविता की प्रतीकात्मकता क्या है ? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि आम के पेड़ और उसके पत्तों की तरह जीवन-क्रम अनंतकाल तक चलता रहता है यानी जीवन का अंत नहीं होता है.**

मेरी काव्य कृति 'आम के पत्ते' का कथ्य बड़ा स्पष्ट है. आम हिंदू धर्म में बहुत पवित्र माना गया है. हमारे यहां पवित्रता की अवधारणा के पीछे उपयोगिता निहित रही है. यानी जो कोई वस्तु हमारे जीवन के लिए परम उपयोगी रही है, उसे पूज्य, पवित्र, देवता आदि मान लिया जाता रहा है. वृक्षों में आम सर्वाधिक उपयोगी वृक्ष है. यही एक ऐसा वृक्ष है जो अपने अनेक रूपों में मनुष्य के लिए उपयोगी होता है. घनी छांह वाला पेड़ कितनी शीतल छाया देता है. बौरता है तो अपनी सुगंध से बसंत बन जाता है. टिकोरे लगते हैं तो टिकोरे भी खाये जाते हैं. यानी आम का फल अपने हर रूप में खाद्य है. चटनी, अचार बनता है और पके हुए आम का तो जवाब ही नहीं है. इतना रसीला फल तो और कोई है ही नहीं. यही नहीं, इसकी गुठली भी खाने के काम आती है. मेरा ख़्याल है कि अपनी इस सबरंग उपयोगिता और सुंदरता के नाते आम पवित्र, पूज्य वृक्ष मान लिया गया है लेकिन होता क्या है कि इन धारणाओं के पीछे जो मूल चेतना होती है, वह समाप्त हो जाती है और धारणाएं एक रूढ़ि बनकर रह जाती हैं. इस

कविता में यही कहा गया है कि आज शहर का आदमी परंपरा से यह जानकारी पा सकता है कि आम एक पूज्य वृक्ष है और उसके पत्ते पूजा-पाठ के काम में आते हैं. लेकिन कैसी विडंबना है कि वह आम को पहचानता नहीं. तो इस कविता में यही कहा गया है कि धर्म के नाम पर तमाम रूढ़ियां शेष रह गयी हैं और जिन वस्तुओं की जीवंतता को लक्षित कर ये रूढ़ियां बनीं वे वस्तुएं इन रूढ़िपालक धर्मकर्मियों की पहचान से गायब होती जा रही हैं.

● **अभी हाल के पत्र में आपने लिखा था कि 'चक्कर आ रहे हैं, पर गोष्ठी में उपस्थित रहने की उम्मीद तो रखता ही हूं.' तात्पर्य यह कि आप हर हालत में अपने प्रिय कर्म को धर्म मानकर उसमें शरीक रहकर उसे संपन्न करने की पूरी कोशिश करते हैं. ऐसी कौन-सी वह शक्ति है जो आपको उत्साहित करके हिम्मत देती रहती है. वह शक्ति कहीं साहित्यिक शक्ति तो नहीं है ?**

'चक्कर आ रहे हैं' मैं यह अनुभव करता था कि चक्कर इतना चक्करदार भी नहीं बना है और यह भी कि कभी आता है, कभी नहीं आता है तो मैं उस पत्र में यह उम्मीद होगी कि उस दिन चक्कर से मुझे मुक्ति मिली रहे और यदि नहीं मिली तो भी चक्कर इतना भयावह नहीं है कि मैं निकल न सकूं, संभलकर किसी के साथ निकल सकता हूं.

● **एक प्रश्न भाषा पर... हिंदी भाषी शिष्यों की भाषा त्रुटि पर आप चिंतित हो उठते हैं. तो क्या अहिंदी भाषी शिष्यों (गुजराती, मराठी, तमिल, पंजाबी आदि) की भाषकीय त्रुटियों पर भी आपत्ति जताते हैं ? या उन्हें अहिंदीभाषी समझकर क्षमा कर देते हैं. क्योंकि हिंदीभाषियों की तरह अहिंदीभाषियों की हिंदी एकदम शुद्ध कैसे हो सकती है. उसमें कुछ फ़र्क तो रहेगा ही. फिर हर भाषा-भाषी के प्रति मानक हिंदी भाषा का आग्रह करना क्या उचित है ?**

हिंदी पूरे देश में बोली जाती है और हर राज्य का व्यक्ति कुछ अलग ढंग से बोलता है. यानी की उसकी मातृभाषा का प्रभाव उसकी हिंदी में दिखाई पड़ने लगता है. पूरे देश में या देश के बाहर बोल-चाल के रूप में जो हिंदी है, उस पर तो अनेक भाषाओं के रंग चढ़ेंगे ही, यह स्वाभाविक है. लेकिन हिंदी का एक मानक रूप भी है, जिसका प्रयोग साहित्य में, शिक्षा में होता है. और हम उम्मीद करते हैं कि हिंदी का शिक्षक, हिंदी का साहित्यकार उसके मानक रूप से परिचित हो और उसका सही इस्तेमाल करे. और मानक रूप का मतलब यह नहीं कि हिंदी का कोई ढला-ढलाया, बना-बनाया रूप पेश कर दिया गया है. इसका मतलब इतना ही है कि व्याकरण की दृष्टि से उसके वाक्य-विन्यास सही हों. वर्तनी सही हो, शब्द तो कहीं से भी लिये जा सकते हैं. तो कहने का अर्थ अगर कई भोजपुरी, अवधी या ब्रजभाषा, गुजराती भाषा या अन्य कोई भाषी हिंदी की शिक्षा प्राप्त करता है और हिंदी में साहित्य लिखता है, तो उससे उम्मीद की जा सकती है कि हिंदी के इस मानक रूप से परिचित हो या उससे परिचित होने का निरंतर प्रयत्न करे. ग़लतियां होती हैं, लेकिन ग़लतियां किसी भी कारण से प्रतिमान नहीं बनती हैं. भोजपुरी छात्र और शिक्षक भी प्रायः 'ने' का प्रयोग नहीं करते हैं. क्योंकि भोजपुरी का अवधि में 'ने' नहीं होता. इस कारण 'ने' का प्रयोग नहीं करना क्षम्य तो नहीं हो पाया. पंजाबी में हर जगह 'ने' ठेल दिया जाता है. जैसे 'मैंने' जाना है. - यह प्रयोग भी स्वीकार्य तो नहीं होगा. इसलिए बोल-चाल की हिंदी और पठन-पाठन तथा लेखन की हिंदी में जो अंतर होता है उसकी पहचान होनी चाहिए.

● **सर आप अपने इस अस्सी साल के बाद भी लिखते जा रहे हैं और हर साल नयी कृति साहित्य जगत को देते जा रहे हैं. वह कौन-सी दिव्य शक्ति है जो आपको लिखते रहने की प्रेरणा देती रहती है. वह शक्ति कोई विशेष व्यक्ति भी तो हो सकता है अथवा मात्र ईश्वर ही... पर ईश्वर को तो आप मानते नहीं हैं तो कहीं साहित्य प्रेम तो नहीं है वह ?**

ईश्वर को मानने न मानने का प्रश्न खड़ा ही नहीं हो सकता है. क्योंकि एक ओर आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि ईश्वर के होने में संदेह व्यक्त करती है और इस नाते मेरे मन में भी यह संदेह है. किंतु मैं अपने को ऐसा समर्थ चिंतक अथवा तत्ववेत्ता भी नहीं मानता कि सदियों से लोकविश्वास में जमे हुए ईश्वर की सत्ता को नकार दूं. ईश्वर के बारे में मैं सोचता ही नहीं. यह मेरे वश के बाहर की चीज़ है. लेकिन अस्सी वर्ष के बाद भी मैं जो इस ठीक-ठाक स्थिति में हूं, उसके लिए मैं अपने को तो नहीं, किसी और सत्ता को ही आधार मानता हूं. यानी यह किसी की कृपा का ही फल है, चाहे जिसकी भी कृपा हो, जब मुझसे छोटी उम्र के लोग काफी अस्वस्थ हो जाते हैं. चल फिर नहीं सकते हैं, तो मैं इतना सही सलामत हूं, यह आख़िर किसकी कृपा है. कोई तो है. अब चूंकि मैं इस उम्र में ठीक-ठाक हूं. मेरा इंद्रियबोध अभी भी बहुत जागृत है. अभी भी अपना समय मुझसे संवाद करता है. आस-पास का सुख-दुःख मुझे पुकारता है, अपना लगता है. समाज देश और विश्व की सीमाएं बेचैन करती हैं ओर मेरे पास लिखने का समय है. इसलिए अभी भी मेरा लेखन कार्य चल रहा है. वह मेरे होने का पर्याय बन गया है. वह मेरे होने की सार्थकता प्रदान करता है, यह ज़रूर है कि अब लंबी दौड़ दौड़ने का साहस नहीं है. इसलिए कोई बड़ा उपन्यास चाहकर भी मैं नहीं लिख सकता या किसी भी बड़ी योजना के साथ मैं नहीं चल सकता. बस छोटी-छोटी यात्राओं के साथ मैं चल रहा हूं और कब तक चलता रहूंगा मैं कह नहीं सकता.

● **आपने एक पत्र में लिखा था कि 'विपरीत परिस्थितियों में ही विश्वास की परीक्षा होती है.' तो विपरीत परिस्थितियां आपके जीवन में भी आयी होंगी, आपने उनका अनुभव कैसे किया ?**

विपरीत परिस्थितियां सबके जीवन में आती हैं. और सभी लोग सहज भाव से उनका अनुभव करते हैं. यानी कि परिस्थितियां स्वयं अपना अनुभव करा देती हैं और यह सही है कि विपरीत परिस्थितियों में हम टिके रहें, भविष्य की आशा, विश्वास और मूल्यों के प्रति आस्था का दामन न छोड़ें. यही हमारी मूल्यवत्ता होती है. हम इन विपरीत परिस्थितियों में कितना कर पाते हैं, यह अलग बात है.

● जो स्वयं बन गयी वही रचना है या जिसे निर्मित किया जाता है वह प्रकृतिदत्त रचना होती है. आप तो गढ़-पीटकर बनाते नहीं हैं. फिर वह कैसे बन जाती है ?

रचना का अर्थ ही है किसी चीज़ को रचा जाये. रचना सहज भी होती है और असहज भी होती है. लेकिन वह हर हाल में रची जाती है. कोई भी रचना अपने आप भड़भड़ाकर नहीं फूटती है. रचना के बिंदु आपके मन में उतरते हैं, आपको अपने से बांधते हैं. आप को परेशान करते हैं, तब आपको लगता है कि इस पर कुछ लिखना चाहिए. इसके भीतर कुछ है, जो एक बड़ी निर्मिति की मांग कर रहा है. यानी कि आप जीवन जीने के क्रम में अनेक अनुभवों से गुज़रते हैं. उनमें कुछ तो दैनिक जीवनचर्या के सामान्य अनुभव होते हैं (जैसे खाना, पीना, उठना, बैठना) कुछ भावात्मक और वैचारिक अनुभव होते हैं, जो अपने भीतर के अनेक मर्म, छवियां और प्रश्न छुपाये रहते हैं और रचनाकार इन अनुभवों के दबाव को बार-बार झेलता है और किसी क्षण में उन्हें अनुकूल भाषा, बिंब, प्रतीक आदि से रचता है. यानी विषय को वस्तु बनाता है. कुछ रचनाकार ऐसे होते हैं जो अनुभवों की कल्पना करते हैं या दर्शन, अवधारणा आदि से जीवन गढ़ते हैं. ये लोग जो रचना करते हैं, वह रचना बड़ी कृत्रिम, अविश्वसनीय एवं उलझी हुई होती है, इसलिए रचना में गढ़ने की सजगता तो हर हाल में होती है. अंतर यह होता है कि एक में अनुभूतियां स्वयं आकार गढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं और दूसरे में बिना किसी अनुभूति के विचार से आप कोई चीज़ लिखने बैठ जाते हैं और ऐसी दुनियां रचते हैं, जो हमारे आस-पास की नहीं होती है.

● रचना निर्मिति के लिए सबसे अच्छा समय कौन-सा होता है ? या आप कभी भी लिख लेते हैं अथवा आप हर समय को अपने अनुकूल बना लेते हैं ?

इसके लिए कोई निश्चित समय नहीं है. हर आदमी का अपना अपना समय होता है. मैं सुबह नाश्ता करने के बाद लिखना पसंद करता हूं. मैं रात में नहीं लिख सकता. मैं सन्नाटे के बीच लेखन कार्य नहीं कर सकता. मैं चाहता हूं कि मैं अपने कमरे में अकेला रहूं और बाहर दुनियां चलती रहे. मैं अपने घर में ही लिख सकता हूं. बाहर या किसी हिल स्टेशन पर महीनों फुर्सत से बैठा रहूं तो भी मुझसे कुछ लिखा नहीं जाता.

● एक बार मैंने देखा था कि आप अपने घर में ही दौड़ने की प्रक्रिया में एक ही स्थान पर 'जॉगिंग' कर रहे थे. क्या आप मानते हैं कि जॉगिंग स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है ?

ऐसा माना जाता है कि जॉगिंग (उछलकूद) स्वास्थ्य के लिए ठीक होता है, तो मैं मानता हूं. दरअसल कूदने-कादने का नियम यह है कि आप दौड़ते रहिए और कूदते रहिए. आस-पास ऐसा पार्क नहीं है, जहां यह कार्य संभव हो. एक छोटा-सा पार्क है जहां मैं प्रातः भ्रमण के नाम पर कई चक्कर लगा लेता हूं और कभी अपने आंगन में आकर कूद-काद लेता हूं तथा व्यायाम की अन्य क्रियाएं भी संपन्न कर लेता हूं. मुझे आंगन का सुख तो है.

● आज दलित साहित्य चर्चास्पद है. आप दलित किसे मानते हैं ? सवर्णों में भी अभावग्रस्त लोग हैं, तो उन्हें भी दलितों को मिलने वाले लाभ मिलने चाहिए या नहीं ? क्या आप मानते हैं कि आर्थिक स्थिति के अनुसार समाज की व्यवस्था होनी चाहिए, वर्ग या वर्ण के अनुसार नहीं ? क्या स्त्रियां भी दलित कही जा सकती हैं ?

वर्ण और वर्ग व्यवस्था समाप्त हो जाये तो यह बहुत श्रेयस्कर स्थिति होगी. इन दोनों ने ही आम आदमी के जीवन को नारकीय बना दिया है. फिलहाल इन दोनों (वर्ण-वर्ग) में दलित लोग बहुत सताये गये हैं, तो दलित का अर्थ यही है कि जो वर्ण और वर्ग दोनों ही दृष्टियों से हमारे यहां की कुछ जातियां पद-दलित, अपमानित, पीड़ित होती रही हैं. उनको ही दलित कहना ठीक होगा. इससे उनकी पहचान में एक सुविधा भी होती है. यदि मात्र गरीबी को ही दलित का आधार बन दिया जाय तो तमाम ऊंची जातियों के वे लोग भी इस कोटि में आ जायेंगे जो आर्थिक रूप से गरीब तो हैं लेकिन जातिगत ऊंचाई, सम्मान तो है. इसलिए यह घाल-मेल ठीक नहीं. यानी आरक्षण के लिए इससे एक बड़ा स्पष्ट रूप सामने आ जायेगा. यह सही है कि स्त्रियां भी बहुत सतायी गयी हैं और विडंबना यह है कि स्त्रियां चाहे उच्च वर्ग की हों, चाहे मध्य वर्ग की, चाहे निम्न वर्ग की वे तरह-तरह से पीड़ित की जाती रही हैं. वे व्यक्ति नहीं, वस्तु या जाति समझी जाती रही हैं. और जैसे पुरुष के योगक्षेम का निर्वाह करने के लिए ही उनका अस्तित्व हो. तो दलित तो वे भी रही हैं लेकिन दलित वर्ग में इन्हें शामिल नहीं किया जा सकता. नारी मुक्ति आंदोलन के नाम से इनकी लड़ाई अलग चल रही है. हां इस संदर्भ में मैं एक बात अवश्य कहूंगा कि दलित लेखक जो लिख रहे हैं, वह तो दलित साहित्य है ही लेकिन दलितेतर लेखकों ने जो दलितों के बारे में लिखा है और बड़ा प्रभावशाली लिखा है उसे भी दलित लेखन के भीतर समाविष्ट करना चाहिए. लेकिन दलित लेखक और कुछ अन्य साहित्येतर कारणों से इस लेखन को दलित लेखन के भीतर आने देना नहीं चाहते.

आर-३८, वाणी विहार,
उत्तम नगर, नयी दिल्ली - ११० ०५९

डॉ. सूर्यदीन यादव

३, पुनीत कालोनी, पवन चक्की रोड,
नाडियाड (गुज.) - ३८७ ००२

वातायन

...और नदी बहती रही

✍ डॉ. अरविंद

पिछले वर्ष, जून में एक अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी में शोध-पत्र पढ़ने कोलंबस (अमरीका) जाना हुआ. कोलंबस शहर ओहियो स्टेट की राजधानी है. यह पहली बार नहीं था कि मैं विदेश जा रहा था. लगभग पंद्रह-सोलह वर्ष पहले, अनुसंधान के सिलसिले में मैं दो साल विक्टोरिया विश्व विद्यालय में पोस्ट डॉक्टरल फेलोशिप के लिए कनाडा रह चुका था. उस दौरान चार-पांच बार अमरीका की यात्राएं कीं. यह अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी सन १९४५ से प्रतिवर्ष ओहियो स्टेट विश्व विद्यालय आयोजित करता चला आया है. आण्विक वर्णक्रमदर्शिकी (मॉलीकुलर स्पेक्ट्रॉस्कॉपी) में अनुसंधान करने वाले विश्व भर के वैज्ञानिक चाहते रहते हैं कि वे इस वार्षिक संगोष्ठी में हिस्सा लें - यह समझ लीजिए कि इस क्षेत्र के वैज्ञानिकों के लिए यह हज़ या मक्का यात्रा करने जैसा होता है.

१९ जून की सुबह एयर इंडिया की फ्लाइट से मुझे शिकागो जाना था. हवाई ज़हाज़ में अपनी सीट पर आया तो तीन सीटों में से किनारे वाली सीट पर एक महिला पहले से विराजमान थीं. पूछा तो मालूम पड़ा कि वे भी कोलंबस जा रही हैं, उनका लड़का आनंद वहीं विश्व विद्यालय में पढ़ रहा है. थोड़ी देर में खिड़की की पास वाली सीट के दावेदार श्री प्रदीप चौधरी भी आ गये. इत्तफ़ाक से वे भी कोलंबस ही जा रहे थे, अपनी भांजी की शादी में शामिल होने. मुंबई से फ्रैंकफर्ट पहुंचने में, जहां पहला पड़ाव था, आठ घंटे लगते हैं. लेकिन चौधरी जी के साथ ने समय बीतने का अहसास ही नहीं होने दिया. चौधरी जी ने भारत छोड़ दिया है और अब आस्ट्रेलिया जाकर बस गये हैं. लखनऊ पुरखों का मकान बेचने आये थे. शिक्षा-दीक्षा लखनऊ में ही हुई है. हिंदी इतनी अच्छी बोलते हैं कि मालूम ही नहीं पड़ता कि वे बंगाली हैं. कल सुबह प्लेन से लखनऊ से दिल्ली आये थे, फिर शाम की फ्लाइट से बंबई. बहन ने काम सौंपा है कि भांजी की शादी में चढ़ाने के लिए गहने चौधरी साहब हिंदुस्तान से लेते आयें. उन्हें चिंता हो रही थी कि कहीं उतरते समय चैकिंग तो नहीं होगी. मैंने उन्हें आश्वस्त करने के लिए कहा कि यह चैकिंग-वैकिंग का चक्कर हिंदुस्तान में ही होता है. दायीं तरफ़ की सीट पर बैठी सहयात्री श्रीमती फ्लॉसी जयकरन की यह पहली विदेश यात्रा थी. वे बैंगलौर के सैंट जॉन मेडिकल कॉलेज में एनॉटॉमी विभाग में एसोशिएट प्रोफेसर हैं.

विमान दो-ढाई घंटे फ्रैंकफर्ट रुका. फ्रैंकफर्ट से शिकागो तक की यात्रा में सात घंटे लगते हैं. चौधरी और श्रीमती जयकरन को उसी दिन दूसरा प्लेन लेकर कोलंबस पहुंचना था जबकि मुझे एक रात अपनी लड़की के पास शिकागो में रुकना था. वही शिकागो शहर जहां स्वामी विवेकानंद ने अपना प्रसिद्ध भाषण - 'मेरे प्यारे अमरीकी भाइयों और बहनों !...' दिया था.

जून महीने के दिन वैसे ही लंबे होते हैं लेकिन १९ जून का यह दिन सब मिला कर लगभग चौबीस घंटे का हो गया था. क्योंकि जब वायुयान शिकागो उतरा तो शाम के छः बज रहे थे. अभी भी काफी उजाला था. इतने दिनों बाद अपने बीच मुझे पाकर लड़की और दामाद बहुत ख़ुश हुए. मेरी आंखें भी सजल हो आयी थीं.

दूसरे दिन, कोलंबस जाने के लिए दोपहर ११ बजे उन्होंने मुझे ग्रे-हॉउन्ड बस में बिठा दिया. यह मेरी अमरीका में, बस की पहली लंबी यात्रा थी. संयोग से बस में भी एक भारतीय सज्जन दिखाई दे गये. पटेल भाई गुजरात से आकर अमरीका में बस गये हैं. शिकागो में ही एक ग्रॉसरी स्टोर के मालिक हैं. उनका पूरा परिवार अमरीका में ही है. तीन लड़के हैं वे अलग-अलग शहरों में ग्रॉसरी स्टोर चलाते हैं. श्रीमान पटेल कभी एक लड़के के पास तो कभी दूसरे के पास आते-जाते रहते हैं. जब समय है तो क्यों प्लेन से जायें, बस यात्रा से सस्ते में काम निपट जाता है.

रास्ते में हम लोग हिंदी में बात करते रहे. पटेल भाई का साथ इंडियानापोलिस तक रहा. वहां से मुझे कोलंबस के लिए दूसरी बस लेनी थी.

रात के आठ बजे के बजाय बस नौ बजे कोलंबस बस अड्डे पहुंची. एकदम अनजानी ज़गह. बस में ओहियो विश्वविद्यालय में पढ़ने वाली एक जापानी छात्रा से जान-पहचान हो गयी थी.

वैसे वह रहती विश्वविद्यालय कैंपस में ही थी किंतु वह भी पहली बार बस से कोलंबस आयी थी. इसलिए रास्तों से अपरिचित थी. हम दोनों एक टैक्सी करके विश्व विद्यालय आये. टैक्सी चालक भला आदमी था, एकदम रजिस्ट्रेशन सेंटर की बिल्डिंग के पास छोड़ गया.

दूसरे दिन सुबह साढ़े आठ बजे संगोष्ठी का उद्घाटन हुआ. मैं अपने छात्र और मित्र डॉ. अशोक जाधव को खोज रहा था जो मेरे एक दिन बाद बंबई से आने वाले थे. उद्घाटन कार्यक्रम के बाद वे दिखाई पड़े. एक से भले दो ! कुछ और भारतीय चेहरे थे. उनसे भी परिचय हुआ. कुछ लोगों से मैं मिलना चाहता था तो कुछ लोग मुझसे मिलना चाहते थे. कुछ नामी-गिरामी वैज्ञानिकों से भी परिचय हुआ, अब तक जिनको केवल उनके काम से जानता था.

संगोष्ठी पांच दिनों की थी. हम लोगों का एक ग्रुप बन गया था - मैं, अरिज़ोना से आये डॉ. राम और मेरे सहयोगी डॉ. अशोक जाधव, वाराणसी से आये डॉ. विपिन सिंह, मद्रास से आये डॉ. उमाकांत त्रिपाठी. हर सेशन में हम लोग साथ ही बैठते. ओहियो विश्व विद्यालय का एक छात्र चैतन्य सक्सेना भी हमसे मिलता रहता. हमारी छोटी-मोटी मदद भी करता रहता. वक्त ज़रूरत के लिए उसने अपना मोबाइल नं. भी दे दिया था. चैतन्य इंदौर का रहने वाला था. हम हिंदुस्तानियों की सबसे बड़ी समस्या भोजन की थी. ख़ासतौर से वेजीटेरियन खाने वालों की. कुछ लोग जेट-लैग से भी ग्रसित थे. लेक्चरों के बीच लंबा गैप मिलता तो कुछ लोग आराम करने कमरे पर चले जाते.

मेरा और अशोक का कमरा अलग-अलग बिल्डिंगों में था. बिल्डिंग में घुसने के लिए क्रेडिट कार्डनुमा प्लास्टिक की चाबी थी जो अगर खो जाये तो सौ डॉलर जुर्माना, यानी कि चार हज़ार छः सौ रुपये देना पड़ सकता था ! कमरे की चाबी अलग. रात में अशोक को बुख़ार आ गया. ए. सी. चलने के कारण ठंडक थी. अशोक ने रूम सर्विस वालों से कंबल नहीं लिया था. ए. सी. बंद करना आता नहीं, कुड़कुड़ाते रह गये. मेरे पास क्रोसीन थी, वही काम आयी. एक दिन के आराम से अशोक की तबियत भी ठीक हो गयी.

मेरी आदत सुबह जल्दी उठने की है. करने को कुछ विशेष था नहीं, घूमने निकल गया. याद आया कि पास ही एक नदी बहती है. दिन के उजाले में रास्ता ढूढ़ना मुश्किल नहीं होता. अभी शहर अंगड़ाई ही ले रहा था. सड़कों पर इक्का-दुक्का कारों के आने-जाने के अलावा कोई आवागमन नहीं था. वैसे भी यहां सड़कों पर पैदल चलते कम ही लोग दिखते हैं. सड़क पार करते समय विशेष ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि अमरीका में ट्रैफिक दायें चलता है. पर उस समय उसका भी ख़तरा नहीं था.

मेरे मन में हमेशा यह प्रश्न उठता रहा है कि भारत और अमरीका आख़िर किन बातों में भिन्न हैं ? मिट्टी, पानी, पेड़, पहाड़ किस चीज़ में अंतर है - स्थूल रूप में सब कुछ वही है पर मैं किसी वृक्ष या पक्षी को पहचानता नहीं. नीम, इमली, शीशम, बरगद, पीपल कहीं नहीं दिखते. हां, यह क्रिसमस ट्री है और यह मेपल ट्री. मैं हाथ बढ़ा कर पत्तियां तोड़ना चाहता हूं. पर थोड़ा घबरा कर सहम जाता हूं. करीब पांच सौ साल पहले कोलंबस हिंदुस्तान खोजने निकला था और पहुंच गया अमरीका. और आज अमरीका विश्व का सिरमौर है - 'बिग ब्रदर'. एक स्वाभिमानी और अहंकारी देश. विश्व का कोई भी देश उसकी बराबरी का नहीं है और भारतवर्ष - प्राचीन सभ्यताओं की क्रीड़ास्थली. जाने कहां-कहां से आक्रांता आये और लूट-खसोट कर चले गये, कुछ वहीं बस गये - 'अतिथि देवो भव !' सालों की ग़ुलामी के चलते शायद हमारे अंदर का स्वाभिमान मृतप्राय हो गया है.

मैं चलते-चलते ओलेंगटैंगी नदी पर बने पुल पर आ गया हूं. सामने धीर-गंभीर नदी बह रही है. बहुत करीने से दोनों ओर पेड़ लगे हैं. ठहरे हुए से पानी में पेड़ों के प्रतिबिंब बहुत सुंदर लग रहे हैं. कई-कई क़तारों में बत्तख़ें तैर रही हैं. सब कुछ बहुत व्यवस्थित है. मेरे अंदर कुछ हिला है. सारा दृश्य अचानक बदल गया है जैसे कोई चमत्कार हो गया है. मुझे लगा कि मैं अपने शहर फतेहगढ़ पहुंच गया हूं और गंगा के किनारे खड़ा हूं. दूर-दूर तक अपार जल राशि दिखाई दे रही है. सुबह की पहली किरणों में सिकता-कण चमक रहे हैं. घाट पर बने शिव मंदिर में आरती प्रारंभ हो गयी है और घंटियों की ध्वनि सुनायी दे रही है.

प्रधान संपादक 'कथाबिंब,'
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८

संदर्भित छायाचित्रों के लिए कृपया दूसरा आवरण देखें.

पुस्तक समीक्षा

विकास, पारंपरिकता और सशस्त्र क्रांति

✍ सुरेश पंडित

समरवंशी (उपन्यास) : डॉ. सोहन शर्मा
प्रकाशक : रचना प्रकाशन, जयपुर - ३०२३१. मू. : ३०० रु.

नक्सलबाड़ी आंदोलन की सफलता या असफलता तो बहस का विषय हो सकती है लेकिन इस सच्चाई को कोई नकार नहीं सकता कि आज़ादी के बाद यह देश का पहला और प्रमुख आंदोलन है जो सशस्त्र क्रांति की अवधारणा को लेकर अब तक किसी न किसी रूप में देश के विभिन्न अंचलों में चल रहा है और पुलिस व प्रशासन की नींद हराम किये हुए है. यह इसलिए भी उल्लेखनीय है कि देश के शोषित, वंचित जन समूह को मानवोचित अधिकार दिलाने के लिए यह निरंतर लड़ाई जारी रखे हुए है. आम जनता के सहयोग और सहानुभूति ने इसे वह ताक़त प्रदान की है कि नवीनतम मारक उपकरणों से सुसज्जित राज्यों की पुलिस भी इसे ख़त्म नहीं कर पायी है.

राजनीति में तो इसकी चर्चा प्रायः बनी ही रहती है, साहित्यकार भी इसे यदा कदा अपने लेखन का केंद्रीय विषय बनाने से विरत नहीं रहे हैं. आश्चर्य है देश की वे सभी पार्टियां जो संसदीय व्यवस्था की पृष्ठ पोषक रही हैं इस आंदोलन को कानून और व्यवस्था की समस्या मानकर इसे बलपूर्वक कुचल डालने की हामी रही हैं. इसका एक कारण संभवतः यह भी रहा है कि इसके उद्देश्य और कार्यप्रणाली आमजन को जितने भाये हैं उसने इनकी सार्थकता को ख़तरे में डाल दिया है. इसलिए उन्हें यह कुछ सिरफिरे बेरोज़गार युवकों का एक ऐसा अमानवीय अभियान लगता है जो विदेशी ताक़तों द्वारा देश के विकास को अवरुद्ध कर उसे कमज़ोर बनाये रखने के लिए चलाया जा रहा है. ये युवक निरीह लोगों की हत्या कर उनकी धन-संपत्ति को लूट लेते हैं और लूट खसोट की रक़म से गुलछर्रे उड़ाते हैं. इनकी नज़रों में इन युवकों की न कोई विचारधारा है और न कोई स्पष्ट उद्देश्य है. चूंकि इनकी मांग राष्ट्रविरोधी नहीं है इसलिए उन्हें आतंकवादी तो नहीं उग्रवादी कहा जाता है.

दूसरी ओर साहित्य में यह आंदोलन ग़रीबी, दमन, शोषण और अन्याय से मुक्ति का आंदोलन बना हुआ है. युवकों की दृढ़ वैचारिक प्रतिबद्धता, अदम्य कार्यकारी क्षमता और अपने लक्ष्यों के प्रति अविचल आस्था इस आंदोलन की वह संजीवनी है जो इसे निरंतर जीवंत बनाये रखती है. बांगला साहित्य के विशेषकर और अन्य भाषाओं के साहित्य में जब तब यह आंदोलन मूर्त होता रहा है. हिंदी में भी ऐसी कहानियां और उपन्यास हैं जिनकी पृष्ठभूमि में यह आंदोलन रहा है, यद्यपि उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है. इस छोटी सी श्रृंखला की नवीनतम कड़ी के रूप में हाल ही में प्रकाशित डॉ. सोहन शर्मा का उपन्यास 'समरवंशी' जुड़ा है. हिंदी में इसको लेकर लिखी जाने वाली रचनाओं की कमी का एकमात्र कारण यह लगता है कि हिंदी प्रदेश का अधिकांश इस आंदोलन की ऊष्मा से अछूता रहा है. यद्यपि बिहार के झारखंड और मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ के आदिवासी क्षेत्र इसकी उपस्थिति का अनुभव करते रहे हैं. इसलिए जो थोड़ा बहुत इस पृष्ठभूमि को लेकर लिखा भी गया है उसमें घटनाओं का रोमांच और पात्रों का रूमानीकरण अधिक है, कठोर यथार्थ से मुलाक़ात कम होती है. लेकिन 'समरवंशी' इस मामले में अपवाद है.

'ज़मीन उसकी जो इसे जोतता है', इस अहम मुद्दे को लेकर नक्सलबाड़ी आंदोलन शुरू होता है और धीरे-धीरे हर उस मेहनतकश इन्सान को अपनी व्याप्ति में समेट लेता है जो दिन रात हाड़तोड़ परिश्रम करते हैं लेकिन उसके प्रतिफल को दूसरे हड़प लेते हैं. बड़े जमींदारों और उनके हितों को संरक्षण देने वाली नौकरशाही, पुलिस और शासक वर्ग को 'वर्ग शत्रु' घोषित कर यह आंदोलन उन्हें अपना टारगेट बनाता है. क्षमा, पश्चात्ताप, प्रायश्चित और हृदय परिवर्तन जैसे शब्द इसके कोश में नहीं हैं. चाय बागान के मालिक, उद्योगपति, जमींदार और सामंती व राजशाही परंपरा के नये वारिस ब्यूरोक्रेट्स तथा राजनेता कभी आम लोगों के प्रति न्याय करेंगे, उन्हें उनका वाजिब हक़ दे देंगे या उन्हें अपने जैसा समझ उनके साथ समानता का व्यवहार करने लगेंगे इस तरह के भ्रम को न यह स्वयं पालता है और न लोगों को ऐसे सपने देखने के लिए यह तैयार करता है. 'समरवंशी' इस आंदोलन के दर्शन, विचार और क्रियाकलाप का एक ऐसा समग्र दस्तावेज़ है जिसे पढ़कर पाठकों की इसके प्रति उपजायी गयी अनेकों ग़लतफ़हमियां दूर होती हैं और वे इसे सही प्ररिप्रेक्ष्य में देखने तथा वस्तुनिष्ठता के साथ आंकने में समर्थ हो जाते हैं.

इसका कथानक पश्चिमी बंगाल के उन वीहड़ इलाक़ों में घूमता है जहां अब भी लोग आदिमयुगीन परिवेश में जीवनयापन कर रहे हैं. आधुनिक यातायात, संचार और प्रौद्योगिकी के 'आउट ऑफ डेट' संसाधन भी वहां लोगों को उपलब्ध नहीं हैं. मेट्रो कल्चर से पूरी तरह अनभिज्ञ ये आदिवासी जल, जंगल, ज़मीन के अपने पुश्तैनी स्वामित्व के अधिकारों से भी वंचित कर दिये गये हैं. अब इन्हें त्रिजोगी नारायण मिश्र और उन जैसे अन्य जमींदारों का बंधुवा बनकर जीवनयापन करना पड़ रहा है. इन्हीं आधुनिक ज्ञान और सूचना के संसार के बहिष्कृत लोगों को, अपने मानवोचित अधिकार पुनः प्राप्त करवाने के लिए संगठित होने और सशस्त्र क्रांति के लिए पारंपरिक व कम आधुनिक शस्त्रास्त्रों से

तैस करने के काम में लगे हैं नक्सलबाड़ी आंदोलन के कार्यकर्ता. ज़मीन से बेदख़ली, क़र्ज़ का भारी बोझ, ब्याज की मार, समयावधि पूरी हो जाने पर भी जमींदारों द्वारा गिरवी रखी ज़मीनों को वापिस न देना और क़ानूनी पेचीदगियों की अनभिज्ञता की वजह से संताप भोगते इन आदिवासियों को संगठित करने के लिए इस आंदोलन की क्रांतिकारी यूनिटों को भारी मशक़्क़त करनी पड़ रही है. सदियों के संस्कारों को धोना, पूरी तरह से नष्ट कर दिये गये आत्मविश्वास को फिर से स्थापित करना और पाप-पुण्य, आत्मा-परमात्मा तथा इहलोक-परलोक की वास्तविकताओं से लोगों को अवगत करा के अपने दर्शन के सांचे में ढालना कोई आसान काम तो नहीं है !

सशस्त्र क्रांति के दर्शन को समझाने के लिए कामरेड चारू मजूमदार अपने कार्यकर्ताओं को कहते हैं- "जो आदमी हथियार इकट्ठा करने में पार्टी की मदद करेगा उसे सच्चा क्रांतिकारी नहीं माना जायेगा." क्योंकि असली काम हथियार इकट्ठा करना नहीं हथियार चलाना है. हथियार चलाकर दुश्मन की हत्या करते समय व्यक्ति का अपने दुश्मन के साथ एक संबंध बनता है. यह संबंध रक्त की धारा के बीच पैदा होता है. एक अहसास... कमजोर और असहाय किसान का ख़ून चूसने वाले 'वर्गशत्रु' के शरीर से बहते रक्त की धार के साथ नफ़रत का जो अहसास पैदा होता है वह क्रांतिकारी नफ़रत को और तेज़ करता है. चारू का मानना है - "जिस व्यक्ति ने 'वर्गशत्रु' के रक्त में अपने हाथ नहीं डुबोये हैं उसे कम्यूनिस्ट नहीं कहा जा सकता."

यों तो 'समरवंशी' को पढ़ना बहुत अल्पज्ञात तथ्यों से रूबरू होना और लगभग अनदेखी राहों से गुज़रना है लेकिन सोहन शर्मा जिस कौशल से बिल्कुल अकल्पित घटनाओं और अनगढ़ चरित्रों को लेकर अपनी कथा को बुनते हैं वह बेमिसाल है. ज़ाहिर है इस आंदोलन के बारे में उनकी जानकारी बहुत गहरी और बहुत विस्तृत है. इसी तरह जिस इलाक़े को वे अपने कथानक की आधारभूमि के बतौर चुनते हैं उसके चप्पे-चप्पे से भी उनकी वाक़फ़ियत ताज्जुब पैदा करती है. पुरखों के श्रम द्वारा तैयार की गयी और पसीने से सींची गयी त्रिजोगी नारायण मिश्र की पुश्तैनी ज़मीन उन्हें अपनी जन्मदायिनी जननी के समान स्नेह और ममता के अदृश्य सूत्रों से बांधती है. उसे ही जब वहां बनने वाले एक विशालकाय बांध के निर्माण को सुविधाजनक बनाने के लिए बेच देने का प्रस्ताव उनके सामने आता है तो वे यकायक इस तरह की अप्रत्याशित अनहोनी परिस्थिति से किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं. उन्हें लगता है उनसे अपनी मां का सौदा करने के लिए कहा जा रहा है. लेकिन जिस प्रकार की रागात्मक अनुरक्ति उनकी इस धरती के लिए है उनके बेटों में उसका चौथाई अंश भी नहीं है. उन्हें खेती से अधिक नौकरी या व्यवसाय आकर्षक लगता है. कृषि से उद्योग और फिर व्यवसाय की ओर यह आमुखीकरण कितना मर्मांतक पीड़ादायी है इसे त्रिजोगी जैसे व्यक्ति ही बता सकते हैं. पारंपरिक भारतीय जीवन शैली और पश्चिमी विकास की अवधारणा के बीच का यह द्वंद्व आख़िर त्रिजोगी की जान तो लेता ही है उनके सुखी-संतुष्ट परिवार को भी छिन्न-भिन्न कर देता है.

भैरव आचार्य इस विकास के प्रतीक पुरुष हैं जिन्हें बांध के निर्माण के अलावा कुछ सूझता नहीं. इसी पर उनका भविष्य निर्भर करता है. इसीलिए वे दिवाकर का इस्तेमाल करते हैं. पर दिवाकर व्यावसायिक तौर पर उतना निर्मम नहीं बन पाता इसलिए असफल होता है. सरकारों की नीतियां और उन्हें क्रियान्वित करवाने का दायित्व वहन करने वाले प्रशासन व पुलिस हर क़ीमत पर इन विकास योजनाओं को पूरी करवाने के लिये उद्यत रहते हैं. इनकी राह में आने वाले किसी भी व्यक्ति की भावनाएं, आस्थाएं और विचार उनके लिए कोई मायने नहीं रखते. उधर नक्सलवादियों के एक्शन बढ़ रहे हैं. जहां तहां वर्ग शत्रुओं की हत्याएं हो रही हैं लेकिन क्रांतिकारियों को भी यह अभियान अपनी जान देकर आगे बढ़ाना पड़ रहा है. विकास भारी मात्रा में विस्थापन पैदा कर रहा है. फ़ायदा बड़े पूंजीपति उठा रहे हैं. क्रांति से बहुत कुछ हासिल नहीं हो रहा फिर भी वह थमने का नाम नहीं लेती है. भूमि सुधार इसे रोक सकता है लेकिन सरकार इसे करने को तैयार नहीं होती क्योंकि इससे जिन लोगों को अधिक नुक़सान होता है वे ही तो सरकार चला रहे हैं या सरकार के संगी साथी हैं. इसलिए क़ानून और व्यवस्था का मसला बताकर इस अभियान को रोकने की कोशिशें जारी हैं. यद्यपि उन्हें भी पता है कि बल प्रयोग से इस पर क़ाबू पाना मुमकिन नहीं है.

इन्हीं सब बातों को एक आकर्षक पैकेज में पाठकों के सामने रखने का प्रयास किया है सोहन शर्मा ने इस उपन्यास में. अपने उद्देश्य में वे कितने कामयाब हुए हैं यह तय करना आपका काम है.

३८३ स्कीम नं. २, लाजपत नगर,
अलवर - ३०१००१

आत्मचेतस स्त्री की झिलमिल छवि

✍ डॉ. सुमित्रा अग्रवाल

मानुष-गंध (कहानी-संग्रह) : **डॉ. सूर्यबाला**
प्रकाशक : किताबघर, नयी दिल्ली, **मूल्य** : १४० रुपये

कहानी उपन्यास की तुलना में एक लघु विधा है - केवल एक छोटी सी उड़ान. परंतु कभी कभी यही उड़ान एक देशकाल को लांघकर हमें दूसरे देशकाल में ले जाकर खड़ा कर देती है. सूर्यबाला जी के नवीन कहानी संग्रह की कहानी 'क्या मालूम' एक ऐसी ही उड़ान है. एक मासूमियत, एक भोलापन, एक अनछुई पवित्रता का अहसास पाठक को उस एक भूलीबिसरी दुनिया में

ले जाता है जब प्रेम केवल एक रेशमी स्पंदन बनकर हृदय की अतल गहराइयों में आजीवन धड़कता रहता था. प्रस्तुत कहानी की संवेदनाओं की उत्कटता कल्पना की उड़ान की नहीं भोगे हुए यथार्थ की अनुभूति कराती है.

संग्रह की शीर्षक कहानी 'मानुष-गंध' आधुनिक युग की एक अति महत्वपूर्ण समस्या पर केंद्रित, है. युवा वर्ग पर अति महत्वाकांक्षी होने का ठप्पा लगाकर उन्हें अपने देश और समाज का दोषी बताकर प्रतिभा पलायन का नारा उछाला तो जाता है पर कथित प्रतिभा पलायन के ढोल की पोल खोलती यह कहानी बखूबी दर्शाती है कि आज की युवा प्रतिभा जब अपने उत्तरदायित्वों के प्रति प्रतिबद्धता के कारण देश और समाज के विकास के साथ जोड़कर ही अपना भविष्य संवारना चाहती है तो किन-किन छलनाओं के साथ उसका साक्षात् होता है. अपनी माटी की गंध, मानुष गंध बनकर उसकी अनुभूतियों में समायी तो रहती है पर दुच्चे स्वार्थों और राजनीति के चलते विकास का महाद्वार उसे अवरुद्ध मिलता है, जब यह बंद द्वार किसी प्रकार भी नहीं खुलता तब वही तथाकथित पराया देश उसे सम्मानपूर्वक आमंत्रित करता है और जो मानुष-गंध उसे यहां मिलनी चाहिए थी वह उस पराये देश में मिलती है. उसका हताश मन इस विकल्प को स्वीकारता तो है पर खिन्नता की प्रतीति के साथ.

'पूर्णाहुति' में जीवन को एक सौग़ात और उत्सव समझकर जीने का हिमायती, जब जो अंजलि में समा जाय उसी का उत्सव मनानेवाले तथा थोड़े में भी मगन रहनेवाले व्यक्ति के समक्ष जब जीवन का यथार्थ बेटी के विवाह की गूढ़ पहेली के रूप में सामने आ खड़ा होता है तब अपने ही विश्वास एक प्रश्नचिन्ह से घिरे सामने आ खड़े होते हैं. जीवन में पहली बार उदासियों के घेरे में स्वयं को घिरा पाकर भी 'वह' अपनी आशंका, अपनी टूटन, अपना भय, अपना बिखराव किसी से भी नहीं बांट सका. अपने आपको नितांत अकेला, निहत्था और पस्त महसूस करता 'वह' स्वयं से ही प्रश्न पूछता है कि जिस यज्ञ का अनुष्ठान उसने किया है उसकी पूर्णाहुति उसकी बेटी को देनी पड़े यह कहां का न्याय है. अपनी सूर्यमुखी आस्थाओं के समापन की इस बेला में उसका साक्षात्कार इस सत्य से होता है कि जीवन में कुछ खुशियां केवल दूसरों के खूंटे से बंधी उनकी कृपा की बाट जोहती हैं. पर इस घटाटोप में भी उसकी आस्था बेटी के स्वरों में ढलकर पुनः अभिव्यक्ति पाती है.

'जश्न' में पड़दादा और पड़दादी बने सयाने पति-पत्नी के मन का जश्न यह जानते ही अवसाद से घिर जाता है कि यह समारोह एक प्रकार से उनकी विदाई का समारोह है. नयी पीढ़ी उन्हें पूर्णकाम समझ कर रुखसती का परवाना पकड़ा रही है पर पुरानी पीढ़ी की सोच भिन्न है - "इतने साज़ो-सामान से लैस, दुनिया खुली पड़ी है हमारे सामने और ये कहते हैं हमारे असबाब बांधने का समय आ गया. आसान है क्या असबाब बांधकर चल देना ? लेकिन इनकी तरफ़ से कोई रोक-टोक ही नहीं ? अचानक ये क्या सूझी इन्हें..." बेशुमार रंग रूपों वाली सजी हुई दुनिया और अपनी देह से रचा बसा एक पूरा संसार छोड़कर जाने का विचार बुढ़ापे के अनगिनत कष्टों के बीच भी उन्हें सुहाता नहीं है और वे सोचते हैं कि हम तो इस सबके बीच ही बने रहना चाहते है. भरी सभा में हुई घोषणा के साथ ही 'जश्न' उनके लिए ब्लैक होल में समा जाता है और एक डर उन्हें घेर लेता है. पड़पोते के जन्म के जश्न के साथ ही उनकी विदाई का परवाना जब सोने की सीढ़ी के रूप में उन्हें थमा दिया जाता है तो अचानक लगा यह धक्का उन दोनों को पस्त कर देता है, स्वयं को अवांछित समझे जाने की व्यथा उनकी सारी उमंगों को नष्ट कर देती है, वरिष्ठ पीढ़ी की संवेदना को उघाड़ती यह कहानी सोने की सीढ़ी के दूसरे सिरे पर भी पाठक को ले जाती है.

'दादी और रिमोट' आधुनिकता के दबाव तले सुन्न पड़ती संवेदनाओं की कहानी है. गांव से शहर आने पर जो दादी टी.वी. के पर्दे पर होती हिंसा को देखकर भी विकल हो उठती थी वही दादी अब पड़ोस में होने वाली हिंसा को भी निर्विकार भाव से सुनकर और उसे आये दिन होनेवाले टंटों में गिनकर चाय की हुड़क को याद करती है. पहले टी.वी. पर होनेवाली हिंसा भी उसके लिए यथार्थ थी और अब यथार्थ में होनेवाली हिंसा भी उसके लिए अर्थहीन है, जो दादी पहले गांव में सभी के सुख-दुःख में भागीदार थी वही अब अपने को समेट कर निर्विकार हो गयी है. मानवीय संवेदनाओं के रीतने की यह कथा अपनी सादगी में भी पाठक को चौंकाती है.

जीते जीते जीवन घिस जाता है और संबंधों की ऊष्मा घटती चली जाती है, व्यक्ति एक रूटीन में स्वयं को स्थित कर अपनी नियत भूमिका निभाता चला जाता है. 'क्रॉसिंग' कहानी की बस स्टॉप पर खड़ी अनजान युवती, रोहिणी के परिवार में एक ताज़ा हवा का झोंका बन जाती है. ट्रांसफर होकर उसके चले जाने के बाद नायक के मन में एक रिक्तता, एक सपाटता पुनः जन्म लेती तो है पर उसे परे झटककर वह फिर जीवन को पुनः जागे उत्साह के साथ जोड़े रखता है. स्त्री के आकर्षण और उससे प्राप्त उत्साह और उत्तेजना को रेखांकित करती यह कहानी नवीनता लिये है.

'तिलिस्म' में वर्षों बाद बेटी के अपनी नन्ही बेटी के साथ आने पर मां में जागी गहरी तृप्ति और अतींद्रिय सुख को दर्शाकर उनके संबंधों की गहरी उष्मा को दर्शाने के साथ ही अधेड़ावस्था की दहलीज़ पर खड़ी मां के अकेलेपन, बेटी के अपनी बेटी में ही डूबे रहने से स्वयं को उपेक्षित समझने की भावना, उस भावना से लगी ठेस को रेखांकित कर उस स्त्री को चित्रित करती है जो अपना अस्तित्व, अपना सुख-दुःख पूर्णतः संतान में विलीन नहीं करती है और बेटी से कुछ अपेक्षा अपने लिए भी करती है. हालांकि एक झिझक भी उसमें बनी रही है.

'सज़ायाफ़्ता' कहानी का प्रत्येक पात्र अपने स्थान पर सही है पर फिर भी कुछ ग़लत है जिसका अहसास कहानी के अंतिम दृश्य में दादा के चेहरे पर छायी हताशा और दयनीयता में होता है. अब तक शांत, स्थिर और सहज रहे दादा के आत्माभिमान पर लगी ठेस, अखिल के चेहरे पर छायी तनाव की रेखाएं और शालिनी की असहायता स्थिति की विडंबना की द्योतक हैं - "थोड़ी देर को जैसे सब कुछ थमा सा रह जाता है. कहीं कोई कौतूहल, जिज्ञासा या प्रश्न नहीं. सब कुछ जैसे समय की अटपटी सी ख़ामोशी चुपचाप निगल गयी. कहां गये वे सारे के सारे सवालों के गुच्छे जो किसी अपने को इतने दिनों बाद देखते ही भरभराकर टूटने बिखरने लगते हैं. बेतरतीब यहां वहां, एक दूसरे से होड़ करते से और कहां यह एकदम जमी हुई जड़ता." आधुनिक परिवेश में खलनायक कोई नहीं है - खलनायक है स्थितियां. इन स्थितियों के कारण ही शालिनी की आंखों में विदा के आंसू नहीं हैं, दादा फर्स्ट क्लास के डिब्बे में निरपराध सज़ा पाये कैदी की तरह लाचार खड़े हैं और अखिल स्वयं को एक अटपटी स्थिति में पाते हैं. सभी निरपराध हैं और सभी सज़ायाफ़्ता भी हैं.

'चिड़िया जैसी मां' में अभी अभी सास बनी मां और अभी अभी पति बने पुत्र के जीवन के एक नाज़ुक मोड़ का चित्रण है. यों तो स्त्री के जीवन से विस्थापन जुड़ा हुआ ही है पर जीवन का सबसे बड़ा विस्थापन उसे ढलती आयु के उन दिनों में सहना पड़ता है जब तथाकथित रूप में अपनी जीवन की सर्वोच्च सफलता घर में बहू लाने की साथ वह पूर्ण कर रही होती है. ढलती उम्र में छीजते शरीर और मन के साथ पीछे अकेले छूट जाने की यातना, पुत्र से भावी अलगाव की आशंका के साथ ही जुड़ जाती है. सब कुछ मौन अकेले सहने की विवशता, उसकी गरिमा और शालीनता उसे कुछ भी नहीं कहने देती. इसी अवस्था में खड़ी अपनी मां की सारी मनःस्थिति को ठीक तरह से समझता उसका असहाय बेटा अंततः उसे चिड़िया जैसा हो जाने का सुझाव देता है.

'मानुष-गंध' संग्रह की कहानियों में मनुष्य के 'मानुष' होने की गंध व्याप्त है. ये सभी कहानियां संवेदना के ताप में गलकर अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण करती हैं.

आधुनिक कहानी यथार्थवाद और वैचारिकता के प्रति अधिक उन्मुख है जो युगीन संदर्भों के अनुरूप भी है. हिंदी कहानी की विकासयात्रा में सूर्यबाला जी का प्रदेय इस यथार्थ के अंकन के साथ-साथ कोमल मानवीय संवेदनाओं और सहज करुणा के प्रभावी अंकन में है. यह कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी कि नये विद्रोही तेवरों के मध्य यह सहज, शांत, सौम्य स्वर एक स्निग्धता का अहसास कराता है.

३५/३६, नमित एपार्टमेंट,
उष्मा नगर, मालाड, मुंबई ४०० ०६४

चांद के कई अक्स

✍ डॉ. वीरेंद्र सिंह

टुकड़े-टुकड़े चांद (काव्य-संग्रह) : **अक्षय गोजा**
प्रकाशक : मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली. मू. : १०० रु.

अक्षय गोजा काव्य विधा में मुक्त छंद तथा ग़ज़ल दोनों के रचनाकार हैं और यही कारण है कि उनके सृजन में विस्तार तथा संक्षिप्तता दोनों का अपना सापेक्ष महत्व है. 'टुकड़े-टुकड़े चांद' की रचनाओं में ये दोनों तत्व मिलते हैं, जो यथार्थ और संवेदना को भिन्न रूपाकारों के द्वारा संकेतित करते हैं और अक्सर इन रचनाओं में 'कन्ट्रास्ट' या विलोम का सौंदर्य प्राप्त होता है.

ऐसी ही एक रचना 'सृजन के क्षण' है जिसमें पूजा की अपेक्षा सृजन के प्रबल क्षण महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि -

पूजा बाद में भी हो सकती है/
परंतु सृजन के प्रबल क्षण/लौट पायें ज़रूरी नहीं.

इन कविताओं में जीवन यथार्थ के संघर्षों का चित्र उकेरा गया है, पर कवि चित्रों के वर्णन तक सीमित नहीं है, वरन् वह इनसे चेतना की अग्रगामी दशा (भविष्य) का परोक्षतः संकेत करता है. 'दर्द से आज़ादी' कविता में जहां दर्द देने वाले (शोषक वर्ग) से यह उम्मीद करना कि वे शोषितों को इस दर्द की दवा दे सकेंगे, एक कष्ट कल्पना है, तभी कवि इन बिखरे हुए दर्दों को एक संगठित रूप में एकत्रित कर समस्या का हल व्यक्त करता है -

सबका दर्द इकट्ठा करें/और दवा खोजें, उसे हासिल करें/
ताकि हम सभी दर्द से आज़ाद हो सकें.

जीवन के अनेक संघर्ष भिन्न क्षेत्रों में अपने अस्तित्व को दर्ज करते हैं जिसे विडंबना, असंगति तथा विसंगति को अनेक रूपाकरों के द्वारा व्यक्त किया गया है. जीवन की गतिमयता दार्शनिक स्तर पर विराम पाती है, और यह विराम है मृत्यु. जीवन और मृत्यु का यह चक्र जीवन सत्य है और मृत्यु निरर्थक नहीं होती है, क्योंकि -

लगता ज़िंदगी इतनी सीमित, नगण्य नहीं/
अभावों, अपर्याप्ताओं के बावजूद अमूल्य/
अपरिहार्य मृत्यु भी भयकारक, निरर्थक नहीं.

इस न ख़त्म होने वाले क्रम को कवि अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है -

कहां से शुरू/कहां पर ख़त्म/ख़त्म होकर/
फिर शुरू/कई बार शुरू/बार-बार ख़त्म.

कवि के इस यथार्थ बोध में प्रेम तथा मनोविज्ञान का जो संकेत प्राप्त होता है और कवि की दृष्टि का, उसके रचना विधान का एक महत्वपूर्ण अंग है. प्रेम का तन से क्या संबंध है, इसे

कवि अपनी एक सुंदर कविता 'एक अदद मन' में व्यक्त करता है. तन और मन सापेक्ष हैं. पर आज तो 'तन ही तन है' और मन 'तन के लिए तन द्वारा संचालित' है. अंत में कवि खोज में है -

एक अदद मन की/जो मिलकर मेरे मन से/एक हो जाये.

प्रणय का रूप जो पति-पत्नी के बीच में होता है, वह बच्चे के आ जाने पर बट जाता है या बढ़ जाता है -

फिर बच्चा आ गया/सोचा/प्रेम घट जायेगा/
पता नहीं था /बढ़ जायेगा.

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कवि की कुछ कविताओं में औरत, भय, विचार तथा कल्पना का मनोविज्ञान परोक्षतः संकेतित होता है. कवि 'मस्त-मशगूल' कविता में कचरे को लेकर स्त्रियों की तकरार, उनकी संबद्धता को संकेतित तो करता है, पर इस पूरे परिदृश्य में वे एक दूसरे से उदासीन रहती हैं. कचरे जैसी नाचीज़ को लेकर कवि स्त्रियों के मनोविज्ञान को संकेतित करता है और यह प्रवृत्ति कवि की रचनाओं में सामान्यतः पायी जाती है. भय ऐसा मनोविकार है जो अमूर्त होकर अनेक रूपों में प्रकट होता है और व्यक्ति की -

शक्तियां निचोड़/मस्तिष्क निष्प्रभ बना/शरीर विजड़ित/
जुबान ख़ामोश कर/समाधान के रास्ते बंद कर देता है.

इसी प्रकार पौधों के विकसित होने में जो श्रम तथा यत्न करने पड़ते हैं वह एक लंबी प्रक्रिया है, उसी तरह-

इस लंबी प्रक्रिया से/शायद एक दिन/
विकसित हो पाये/तुम्हारी कल्पना का पौधा.

कल्पना का यह रूप सृजन-प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसे कवि ने पौधे के द्वारा व्यक्त किया है.

५ झ १५, जवाहर नगर, जयपुर ३०२ ००४

संघर्षरत स्त्री का अद्‌भुत प्रेरणाप्रद कथा संसार

✍ राजेंद्र आहुति

आलो-आंधारि (उपन्यास) : **बेबी हालदार**
प्रकाशक : रोशनाई प्रकाशन, २१२ सी.एल./ए, अशोक मित्र रोड, कांचरापाड़ा, उत्तर २४ परगना-७४३१४५
मू. : ५० रु.

'सभी का सोचना था कि स्वामी का घर छोड़ने से मेरा मर जाना भला था. मैंने घर क्यों छोड़ा, यह समझने की कोशिश कोई नहीं करता. मैं चाहती थी जब बच्चों को जन्म दिया है तो उन्हें ठीक से पाल-पोसकर बड़ा भी करना होगा. सिर्फ़ जन्म देने से कुछ नहीं होता, बच्चों को मुनष्य बनाने की ज़िम्मेदारी भी उठानी पड़ती है. इसके लिए एक अच्छे परिवेश की ज़रूरत होती है और यह बात मेरा स्वामी समझना नहीं चाहता था. हम जिस परिवेश में थे, उसे छोड़ने को वह तैयार नहीं था और इस बात को लेकर, बच्चों के सामने ही, हमारे बीच रोज़ झगड़ा होता था. मुझे लगता कि यदि यही हाल रहा तो मेरे बच्चे अमानुष हो जायेंगे. तभी से मेरे मन में यह बात बैठ गयी थी कि अपने स्वामी के भरोसे बैठे रहने से काम नहीं चलेगा, मुझे स्वयं मज़बूत होना होगा और अपने पैरों पर खड़े होना होगा.'

उपरोक्त कथन उपन्यास 'आलो-आंधारि' की मुख्य नायिका का है और नायिका ही उपन्यास लेखिका भी है. जो बचपन से लेकर अपने जीते समय तक निरंतर पेट भर भोजन के लिए, उन्मुक्त हंसी के लिए, अच्छी नींद के लिए, दूसरों की ख़ुशी के लिए, यंत्रणाओं के मकड़ जाल से संघर्ष करती चली गयी. बचपन, बचपन की तरह नहीं बीता; जवानी, जवानी की तरह नहीं बीती. पिता तो थे मगर सिर्फ़ नाम के, मां भी थी मगर वह पिता के द्वारा उत्पन्न अर्थाभाव को बर्दाश्त नहीं कर सकी और एक दिन उसके हाथ में दस पैसा थमाकर गोद के बच्चे को साथ लेकर न जाने कहां चली गयी. बच्चे बच्चियों को भाग्य के सहारे छोड़कर. पिता जो बच्चों से प्यार तो करता है मगर लिप्त रहता है अपने देह सुख में. वह घर से कहीं चली गयी पत्नी को ढूंढने की जगह नयी स्त्री को घर ले आता है और स्त्री की ग़ुलामी स्वीकार लेता है. बेटी की शादी ऐसे लड़के से कर देता है जो बेटी की उम्र से दुगना बड़ा होता है. लड़के की पारिवारिक पृष्ठभूमि बिना ज्ञात किये, खेलने की अवस्था में, भाग्य के सहारे विदा कर देता है. पति प्यार देने से अधिक मारता है. किसी के घर मन बहलाने के लिए पत्नी जाती भी है तो संदेह की दृष्टि रखता है. मगर यही पति घर-घर जाकर पत्नी के काम करने से इसलिए प्रसन्न रहता है कि घर में पैसे आ रहे हैं, उसके पैसे बच रहे हैं. शनैः शनैः वह तीन बच्चों की मां बन जाती है. पति के पैसे उसके किसी काम के न थे. उसे अपने बच्चों की जीविका के लिए दूसरे के घर के जूठे बर्तन ही धोने पड़ते थे. जब यही सब करके जीना है और जिलाना है बच्चों को तो पति के संग रहने से क्या लाभ. अपने तीन बच्चों को लेकर एक दिन उसने दुर्गापुर से फ़रीदाबाद के लिए रेलगाड़ी पकड़ ली. कुछ दिन वहां रहकर गुड़गांव चली आयी और एक 'काजेर मेये' यानी घरेलू काम करने वाली बन गयी. जिस घर में वह काम करती थी उसके मालिक थे श्री तातुश जी जिन्होंने उसके भीतर पढ़ने और लिखने की चाह उत्पन्न करवायी. उसी का सफल प्रमाण है उपन्यास 'आलो-आंधारि' अर्थात उजाला-अंधेरा !

'आलो-आंधारि' के प्रकाशन की कहानी कहें तो वह प्रेम, जिजीविषा और सहयोग की भी एक कहानी बनती है - बेबी हालदार को तातुश ने कहा कि उसका जितना भी अक्षर ज्ञान है

उसी को सबल बनाकर लिखे. बेबी ने लिखना शुरू किया तो लिखावट ऐसी और वाक्य ऐसे व्याकरण-शून्य कि पढ़ने पर समझ में न आये. तातुश ने अपने दोस्तों को बेबी का लिखा क़िस्तवार पढ़वाना शुरू किया और उन लोगों ने बुरी लिखावट और अटपटे वाक्यों के बावजूद पढ़ना जारी रखा. हर क़िस्त के साथ बेबी की लिखावट और वाक्य बेहतर होते गये और दोस्तों को लगने लगा कि बेबी कोई ऐसी चीज़ लिख रही है जिसे औरों को पढ़वाना चाहिए. बेबी का सौभाग्य कहिए कि दोस्तों के बेटे की उमर के एक प्रकाशक ने बेबी की 'पांडुलिपि' पढ़कर आवेग के अतिरेक में उसके हिंदी अनुवाद (प्रबोध कुमार) को छापने का निर्णय कर लिया. अक्सर प्रकाशक वह क़िताब छापता है जिसकी पांडुलिपि उसके पास इस निवेदन से आती है कि उसे प्रकाशित कर लेखक को धन्य किया जाये. लेकिन 'आलो-आंधारि' के लिए प्रकाशक की तरफ़ से निवदेन हुआ. जिस तरह चार पांच दोस्तों ने बिना दोस्ती को 'रजिस्टर्ड' क़रार दिये बेबी हालदार की रचना को सराहा और उसे दूसरे पढ़नेवालों तक पहुंचाने के लिए क़िताब का रूप देने का प्रयास किया वह हिंदी प्रकाशन के क्षेत्र में तो अद्‌भुत ही कहा जायेगा.

'आलो-आंधारि' का प्रथम संस्करण (२०००) हाथों-हाथ शीघ्र ही समाप्त हो गया. दूसरा संस्करण (२००३) पढ़ने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ. पढ़ना प्रारंभ किया तो अंत करके ही संतुष्टि मिली. पढ़ने के क्रम में पुरुष के वर्चस्ववादी दृष्टिकोण को और स्वार्थयुक्त आत्मीयता की जगह अवहेलना के अनवरत सिलसिले से मन कई-कई बार क्लांत होता रहा. करुणा और संवेदना का ऐसा सैलाब है इस उपन्यास में कि आंखें रह-रहकर बह जाने को आतुर हो उठती हैं. स्त्री विमर्श का अद्‌भुत शोर है सर्वत्र. कई नामी लेखिकाएं स्त्री-विमर्श के तहत स्त्री के संघर्ष को नये सिरे से रच रही हैं. जिसमें मैत्रेयी पुष्पा, जया जादवानी, लवलीन, मधु कांकरिया, प्रभा खेतान, अलका सरावगी अपनी विशिष्ट भूमिका निभा रही हैं. मगर सही अर्थों में कई दुखों की गलियों से गुज़र कर बग़ैर किसी पर पुरुष को अपनी देह सौंपे स्त्री विमर्श की अद्‌भुत कथा संसार का स्वाद लबालब भरा है 'आलो-आंधारि' में. जिसकी रचयिता कोई ख्यात लेखिका नहीं एक निम्न काम काजी महिला है. यह उसकी आत्म-संघर्ष कथा है जिसमें संबल है जीवन से लड़ने का और स्वप्न है बच्चों को स्कूल जाते देखने का. वह दूसरे के घरों को अपने जीवन के उत्थान के उद्देश्य से संवारती है.

हम किसी दूसरी भाषा का हिंदी अनुवाद तभी पढ़ पाते हैं जब वह अपनी भाषा में प्रकाशित होकर चर्चित हो चुका होता है. इसके कई उदाहरण हैं, यहां तस्लीमा नसरीन की पुस्तक का उल्लेख करना उचित लग रहा है. जो बंगला में प्रकाशित हुई. उसके पश्चात दिल्ली के एक बड़े प्रकाशक अधिक मुनाफ़ा पैदा करने के उद्देश्य से दना-दन छापते जा रहे हैं. मगर 'आलो-आंधारि' की स्थिति दूसरी है. यह अभी तक मूल लेखन बंगला में न जाने किस वजह से प्रकाशित नहीं हो सका. यदि उसे हिंदी का कोई चर्चित प्रकाशक छापता तो मूल्य इतना रख देता कि वह अपने आप दुर्लभ हो जाता. सुलभ मूल्य रखना नये प्रकाशक ही संभव कर सकते हैं. १४३ पृष्ठों के उपन्यास का मूल्य मात्र पचास रूपये, साथ ही, शीघ्र ही दूसरा संस्करण आना सच में हैरत में डालता है.

'आलो-आंधारि' आम उपन्यास की तरह सोचा समझा नायक, नायिका व खलनायक के चरित्रों से ओत-प्रोत सुगठित परिणति वाला आत्मचिंतन नहीं है और न लेखकों में शामिल हो जाने की उत्कंठा से रची गयी कोई लंबी कहानी है. यह नारी के समक्ष परोसा गया समय का एक ऐसा ज्वलंत दस्तावेज़ है जिसे पढ़कर कोई भी साधारण मां अपने बच्चों को ठीक ढंग से संवारने के लिए प्रेरित हो सकती है. यह उपन्यास दर्शाता है कि बच्चों को पिता नहीं एक मां ही संभाल और संवार सकती है. आज बेबी हालदार एक लेखिका हो जाने से अधिक अपनी खुशी इन शब्दों में व्यक्त करती है - "आज बेबी अपने बच्चों को स्कूल जाते देखती है तो यह सोचकर उसे सुख मिलता है कि बड़े होने पर बच्चे अपना परिचय देने में लजायेंगे नहीं." दोस्तों की चिट्ठी-पत्री और फोन पर बात करने का एक निमित्त ही बेबी की पुस्तक बन गयी और एक मुद्दा यह भी रहा कि 'आलो-आंधारि' साहित्य की कौन-सी विधा में है. निचोड़ यह निकला कि साहित्य को विधाओं में बांट नहीं सकते. कोई कहानी कवितामय हो सकती है और कविता में भी गद्य की शक्ति ज़ाहिर हो सकती है. जैसे ग़ालिब के शेरों में. इस लिहाज़ से इस साहसी नतीज़े पर पहुंचा गया कि 'आलो-आंधारि' चाहे लंबी कहानी हो, आत्मकथा हो या उपन्यास सबसे पहले साहित्य है.

बेबी हालदार की किताब सचमुच बहुत अच्छी है. इस बात का ध्यान रखा गया है कि कहीं ऐसा न लगे कि लेखिका के मुंह से अनुवादक बोल रहा है. इस कोशिश में बांग्ला वाक्य विन्यास को अधिक छेड़ा नहीं गया है और कुछ शब्दों को भी वैसा का वैसा रहने दिया गया है. बेबी हालदार ने कई जगह अंग्रेजी के शब्द इस्तेमाल किये हैं. उनकी जगह बहुत आसानी से हिंदी के शब्द दिये जा सकते थे. लेकिन इसकी ज़रूरत नहीं समझी गयी. क्योंकि भारतीय समाज का एक वर्ग ऐसे शब्दों का इस्तेमाल यदि करता है तो अपनी भाषा का ही समझकर. इस सच्चाई का उस दिन प्रमाण भी मिल गया जब एक जगह 'इनकम' लिखने के बाद बेबी पूछ बैठी कि इसे अंग्रेजी में क्या कहते हैं.

इस उपन्यास में लापरवाह पति के लिए कई सार्थक वाक्य आये हैं, जैसे - 'बाप को क्या बच्चे के ऊपर नज़र नहीं रखनी चाहिए ? सिर्फ़ पैसा खर्च करने से काम नहीं चलता, उसके पीछे खटना भी बहुत पड़ता है. यह कहां की बात हुई कि केवल मैं

ही चिल्लाती रहूं और तुम चुपचाप तमाशा देखते रहो. एक तरफ़ मैं बच्चे को आदमी की तरह आदमी बनाने की कोशिश करूं और दूसरी तरफ़ तुम उसे चार आना-आठ आना दे-देकर सिर पर चढ़ाओ ! इसी से तो उसका लिखना पढ़ना रह गया.'

इस उपन्यास के पक्ष में मेधा पाटकर, के. सच्चिदानंद, ललित सुरजन, पुष्पेश पंत, श्री धरम मदन कश्यप, शीला रेड्डी, संजय गौतम, विष्णु प्रभाकर, मैत्रेयी पुष्पा, माया, मैना भटनागर, विजय मोहन सिंह, राम शंकर द्विवेदी, रमेश गोस्वामी के तर्क युक्त विचार फ्लैप पर अंदर और बाहर दर्ज़ हैं. मैं अपनी बात आपको इस उपन्यास को एक बार पढ़ लेने के आग्रह के साथ मैत्रेयी पुष्पा के बयान से समाप्त कर रहा हूं : 'बेबी हालदार की यह आत्मकथा लाखों-करोड़ों स्त्रियों की कहानी बन गयी है, क्योंकि इसमें उन शोषित वंचित और सतायी गयी औरतों का दर्द प्रतिबिंबित होता है, जो देशकाल का अतिक्रमण करके साहित्य का नया सौंदर्यशास्त्र बनाता है.'

ए १३/६८, भगतपुरी,
प्रहलाद घाट, वाराणसी - २२१ ००१.

नदी के बहाव की ग़ज़लें

देवेंद्र

हम नदी की धार में (ग़ज़ल संग्रह) : **कैलाश झा 'किंकर'**
प्रकाशक : मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली-११००९२. **मू.** : १२५ रु.

जब मानवीय संवेदना संतप्त हो जाती है, युग अपने धर्म से विचलित हो जाता है, रक्षक-भक्षक बन जाता है, लोगों में असंतोष का धुआं भरने लगता है, भाई-भाई का दुश्मन बन जाता है, तब अभिशप्त मानवता का कल्याण करने के लिए कोई चितेरा लेखनी और वाणी के मरहम से परिचारक का काम करने के लिए आगे बढ़ता है.

कुछ ऐसा ही प्रयास किया गया है कैलाश झा 'किंकर' द्वारा, "हम नदी की धार में" पुस्तक में. सांगोपांग अनुशीलन के बाद पता चलता है कि प्रथम ग़ज़ल में ही कवि की अंतर्वेदना प्रस्फुटित हुई है. वर्तमान दौर में तक्षक की तरह इंद्र-सिंहासन से चिपके इंद्रत्व प्राप्त कर लोग रातोंरात आसमान तक पहुंच जाते हैं तथा सरज़मीं से जुड़े लोग लकीर के फ़क़ीर ही रह जाते. प्रतिभाशाली लेखक, कवि या पत्रकार को देखता है कौन ?

मुझे ही लोग गिनती में कहीं पर छोड़ देते हैं,
ज़रूरत है इधर लेकिन नज़र उस ओर देते हैं।

वर्तमान व्यवस्था में हत्यारे, लुटेरे, भेड़िया की तरह स्वच्छंद घूम रहे हैं. विश्वासघात कर घड़ियाली आंसू बहाना मानो युगधर्म बन गया है. कवि खेद प्रकट करता है -

धड़कते दिलों का जुनूं मर गया अब,
तभी तो निडर भेड़िया गा रहा है।

किया क़त्ल जो कुछ हड़पने की ख़ातिर,
वही हाथ दो गज़ कफ़न ला रहा है।

यह कटु सत्य का रहस्योद्घाटन है.

आत्मविश्वास का संबल लेकर निष्काम कर्म पथ पर अग्रसर होना कवि का पैग़ाम है. पुनः जीवन को संघर्ष मानकर परिश्रम से जी न चुराने की प्रेरणा भी विचारणीय बिंदु है. आज सामाजिक विषमता चरमोत्कर्ष पर है. ग़रीबों के रक्त से जीवन निर्वाह करने वाले अमीर-ज़ादों की अमीरी बढ़ती जा रही है तो न जाने कितने मंगरू बिना रोटी काल के गाल में जा रहे हैं. कवि की पैनी दृष्टि से बच्चे, बूढ़े तथा जवान ओझल नहीं होते. बच्चों के कोमल दिमाग़ में ज़हर भरकर स्वार्थी तत्त्वों द्वारा हथकंडे बनाया जाना भी सोचनीय है.

लोक मंगल की वेदी पर अपनी रचना न्यौछावर करने वाले रचनाकारों की रचना पर विराम लगा है. वे वास्तविकता को चित्रित करने के बदले कुर्सी के यशोगान में ही अपने कर्म की इतिश्री मान लेते हैं.

आग लग जाती अगरचे राज़ सारा खोलते,
लोकहित में ख़ूब अधरों को सिया है आपने।

कवि समुदाय के लिए चिंता का विषय है. किंतु, कवि को विश्वास है कि धैर्य के साथ सत्य का बखान करने वाली, दुःख-दर्द के लिए संघर्ष करने वाली रचना कालजयी होती है.

कवि की दृष्टि सामाजिक बुराइयों की ओर भी गयी है. जाति और धर्म के नाम पर हमारे देश में रक्त की होली खेली जा रही है. नेफा से लद्दाख तक की रक्त रंजित धरती धार्मिक उन्माद का परिणाम है. यदि लोग विष वमन करना छोड़ प्रेम का बीज वपन करें तो राष्ट्रीय उत्थान के साथ-साथ -

दुखी ज़िंदगी फूल बनकर खिलेगी,
रचेंगे जभी हम फ़साना ख़ुशी का।

यह बात सत्य सिद्ध होगी. मानव विभिन्न जातियों और धर्मों में बंटा है, लेकिन मानवता और इन्सानियत तो एक है. साथ ही कवि ने जीवन के विशाल प्रांगण में विध्वंसक आविष्कारों के परिणाम का हल ढूंढा है.

कवि की मान्यता है कि स्वार्थ की भावना, लूट का सिलसिला और अन्याय इस तरह सर चढ़कर बोल रहा है कि आदमी, आदमी को देखकर दर्द का पिटारा लिये मारा-मारा फिर रहा है. हितैषी नेता भी स्वार्थ के प्रवाह में बहकर, वोटों के बल पर चुनाव जीत कर गिरगिट की तरह रंग बदल लेते हैं. क्या होगा इस देश का ? लेकिन यक़ीन है,

लाश के इस ढेर पर ख़ामोशियां हैं,
एक दिन तूफ़ान आयेगा यक़ीनन।

समाज में ज़हर घोलने वाले दग्ध होंगे. सच बोलने वाले आंखों की किरकिरी बनते हैं. मतलबी ढाल वालों का पतन निश्चित है. पीर और मीर के पोल खुलेंगे. कवि ने इन मुश्किल कामों को कर दिखाने का बीड़ा उठाया है. क्योंकि प्रतिघात से जुल्मी बन नहीं सकते. इसलिए तक़रार छोड़कर सत्य पर विश्वास करना चाहिए.

आमजनों के अधिकार के लिए संघर्ष करना, दीन-हीन के लिए आवाज़ उठाना, दरिंदों की ताक़त को आज़माना कवि की रचना का मुख्य उद्देश्य है. आज के नेता कुर्सी के लिए जाति, धर्म, भाषा, संप्रदाय के नाम पर कुछ भी कर बैठते हैं. नौकरशाहों के बीच प्रचलित रिश्वतख़ोरी से आम जनता त्रस्त है. कवि का यह संकेत बुद्धिजीवियों के लिए घृणा की बात है.

"अनेकता में एकता" का उदाहरण प्रस्तुत करने वाले भारत के लिए राष्ट्रीय एकता आज की ज्वलंत समस्या है. पाक भारतीय एकता को खंडित करने पर तुला है. इस संदर्भ में कवि की व्योमविहारिणी कल्पना शक्ति हिंद-पाक एकता की बात करती है. वह यह भूल जाता है कि जातीयता और धार्मिक कट्टरता की ग्रंथि से पीड़ित राष्ट्र, उग्र-राष्ट्रवाद को जन्म देता है. जो मानवता के लिए घातक है. जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हिटलर द्वारा यहुदियों पर किया गया अत्याचार है. ऐसे राष्ट्र के साथ एकता की बात कोरी कल्पना नहीं तो और क्या ?

हर्ज़ क्या है ? पाक भी जब हिंद में मिल जायेगा,
देखिएगा एशिया का फिर कमल खिल जायेगा.

गर्व की बात है कि शहर में रहते हुए कवि गांव-घर को नहीं भूला. उसकी आत्मा गांव से जुड़ी है. अतः किसान-मज़दूरों की बेबसी उसकी आखों में समाई है. दर्द की नदी उसके अंतस्थल से प्रवाहित हो रही है. कवि के अनुसार गांव में ही ईमानदारी है. वह दाने-दाने के लिए तरसता है, लेकिन हिंदुस्तान का पेट भरता है. इसलिए पालक के पेट पर लात मारने की जगह उसकी पीठ थपथपाने की सलाह देता है. लेकिन दुःख है कि शहर में रहने वाला ग्रामीण युवक प्रेम-विवाह कर माता-पिता को भूल जाता है. बुरे व्यसनों में लीन हो जाता है.

कवि को आत्म विश्वास है -
"सबको जवाब मिल जायेगा,
जब काव्य पुष्प खिल जायेगा."

अतः कवि की रचना समसामायिक और मील का पत्थर है. इस रचना में झोपड़ी के अंतर्नाद से महल के अट्टहास, गांव से नगर, नेता से अनुयायी, किसान से मज़दूर, शोषितों से बच्चों तक की चिंता व्यक्त की गयी है. गर्व की बात है, कवि ने सत्ता के मोह-जाल में न उलझ कर यथार्थ का चित्रण सफलतापूर्वक किया है. रचना जीवन का वास्तविक प्रतिबिंब है.

सम्मोहन

✍ मधु प्रसाद

विषपायी सर्पों का पहरा
घाटी में बोया है चंदन.
पर्वत-पर्वत पीड़ा उभरी
नदिया-नदिया बहते हैं क्षण.

अनुप्रास बन कर उभरा है
आखर-आखर नाम तुम्हारा.
मन की पोथी में लिख डाला
जीवन का अध्याय दोबारा.

भेद भला कैसे रह पाता
आंखों से छलका सम्मोहन.

अनायास वह प्रणय-निवेदन
अधरों पर बादल के उभरा.
बदली से संदेशा पाकर
संवादों ने तोड़ा पहरा.

नूपुर बांध लिया सावन ने
रोम-रोम में थिरकन थिरकन.

जो दिखता है दूर क्षितिज पर
प्रियतम का द्वारा लगता है.
सीमाओं में बंधा हुआ यह
आत्मिलन न्यारा लगता है.

देह मुक्त हो जाये जिस पल
सांसें बन जायें वृंदावन.

२९, गोकुल धाम सोसायटी,
कलोल-महसाना हाईवे, अहमदाबाद-३८२ ४२४

ग़ज़ल की भाषा प्रांजल और सहज बोधगम्य है. शब्दों की जटिलता से भाव बोझिल नहीं हैं. हां, एकाधिक उर्दू शब्द सामान्य पाठक के लिए कठिन हो सकते हैं. आने वाला समय कवि का होगा, ऐसा मेरा विश्वास है.

विद्या निकेतन, बेगूसराय (बिहार)

मन सौगान हुआ

✍ मधु प्रसाद

मन सागौन हुआ !
पात-पात पीपल लिखता है
गुल मोहर को पत्र.
बरगद के हाथों से भेजा
सोन जुही का चित्र.
बीच राह में ठगा रह गया
मौसम मौन हुआ.
आंगन-आंगन फैल रही थी
हर सिंगारी गंध.
टेसू कब से सोच रहा है
पूरे हों अनुबंध.
अमलतास के घर हो आया
पागल पौन हुआ.
हरियाला जंगल कट-कट कर
होता है कंगाल.
लालच की जादूगरनी ने
क्या फैलाया जाल.
तिनका-तिनका नीड़ों का
भूतों का भौन हुआ.
नदियों के अनगढ़ प्रवाह-सा
जीवन का जंजाल.
शैवालों में उलझ रहे हैं
सीपी, शैल, प्रवाल.
घाट-घाट का पानी पीकर
सागर नोन हुआ.
उपवन-उपवन मारा फिरता
हरकारा मधुमास.
मिला नहीं संदेशा प्रिय का
मन में हुआ निराश.
पूछ रहा है देवदार से
किसका कौन हुआ ?

२९, गोकुल धाम सोसायटी,
कलोल-महसाना हाईवे, अहमदाबाद-३८२ ४२४

टेम्स का पानी

✍ तेजेंद्र शर्मा

टेम्स का पानी, नहीं है स्वर्ग का द्वार,
यहां लगा है, एक विचित्र माया बाज़ार !

पानी है मटियाया, गोरे हैं लोगों के तन,
माया के मकड़जाल में, नहीं दिखाई देता मन !

टेम्स कहां से आती है, कहां चली जाती है,
ऐसे प्रश्न हमारे मन में नहीं जगा पाती है !

टेम्स बस है ! ...टेम्स अपनी जगह बरक़रार है,
कहने को उसके आसपास कला और संस्कृति का संसार है !

टेम्स कभी खाड़ी है, तो कभी सागर है,
उसके प्रति लोगों के मन में, न श्रद्धा है न आदर है !

बाज़ार संस्कृति में नदियां, नदियां ही रह जाती हैं,
बनती हैं व्यापार का माध्यम, मां नहीं बन पाती है !

टेम्स दशकों, शताब्दियों तक करती है, गंगा पर राज,
फिर सिकुड़ जाती है, ढूंढ़ती रह जाती है अपना ताज !

टेम्स दौलत है, प्रेम है गंगा; टेम्स ऐश्वर्य है, भावना है गंगा,
टेम्स जीवन प्रमाद है, मोक्ष की कामना है गंगा !

जी लगाने के कई साधन हैं टेम्स नदी के आसपास,
गंगा मैय्या में जी लगाता है, हमारा अपना विश्वास !

74 A, Palmerston Road,
Harrow & Wealdston,
Middlesex HA3 7RW (U K)
e-mail : kathauk@hotmail.com

रचनाएं आमंत्रित

'कथाबिंब' के लोकप्रिय स्तंभों 'आमने-सामने' और 'सागर-सीपी' के लिए रचनाएं आमंत्रित हैं. रचनाएं तैयार करने / भेजने से पहले कृपया पूर्व-सूचना दें ताकि आवश्यक सुझाव दिये जा सकें. स्तरीय कहानियां भी आमंत्रित हैं.

-संपादक

ग़ज़लें

विकाश

आप मेरा हिसाब रखते हैं,
वक़्त का क्या जवाब रखते हैं.

बारिशों का भरम नहीं देना,
हम भी सीने में आब रखते हैं.

क्या अंधेरा हमें हरायेगा,.
आंख में आफ़ताब रखते हैं.

हम नशेमन से टूटकर फिर भी,
एक ताज़ा गुलाब रखते हैं.

लोग आये चले गये लेकिन.
याद के चंद ख़्वाब रखते हैं.

बुत बनाकर उसे मिटाना है,
भूल जाने का ये बहाना है.

इस विरासत को लौट जाना है,
ख़त वही है मगर पुराना है.

आदमी देवता वफ़ा क़िस्मत,
धूल है मिट्टी है या फ़साना है.

सोच में डूबकर कहा उसने,
दर्द है आप हैं ज़माना है.

कोख बंजर नहीं रहे अपनी
एक पौधा हमें उगाना है.

अनिरुद्ध सिन्हा

नये हालात में क्या-क्या नये मंज़र दिखाते हैं,
जिसे अपना बनाते हैं उसे भी आज़माते हैं.

तुम्हारे कटघरे में हम नहीं आकर खड़े होंगे,
हम अपनी बेबसी का कटघरा ख़ुद ही बनाते हैं.

सुबह से शाम तक चिड़िया मुंडेरे पर उतरती हैं,
नयी पैबंदकारी से नहीं उनको उड़ाते हैं.

उन्हीं के होंठ पर बर्बादियों के सिलसिले रखिए,
जो अपने होंठ पर आवाज़ की जुंबिश बचाते हैं.

अनोखे ख़्वाब भी इन्सानियत के हो गये क़ातिल,
पलक को चूमते ही कोख में बिजली गिराते हैं.

ज़ख़्म उनसे अगर नहीं होता,
आईना भी मुखर नहीं होता.

वक़्त के रास्ते से गुज़रेगी,
धूप का कोई घर नहीं होता.

हम अकेले कहां-कहां जाते,
होके तन्हा सफ़र नहीं होता.

वो नज़ारा कहीं बदल जाता,
हादसा तो इधर नहीं होता.

उम्र ग़म से निबाह कर लेती,
आपका साथ गर नहीं होता.

गुलज़ार पोखर, मुंगेर - (बिहार) ८११ २०१

घर-परिवार के लिए एक ज़रूरी पत्रिका **कथाबिंब**

'कथाबिंब' आपकी अपनी पत्रिका है, इसे ख़ुद पढ़ें और मित्रों को पढ़ायें.

ग़ज़लें

✍ भोला पंडित 'प्रणयी'

मज़हबी रिश्तों से न हर कोई मुअत्तर हुआ,
ज़िंदगी जीने को इक मकां तो चाहिए ।

शहर में इक नाम जब हर ज़बां आबाद है,
उसकी सिफ़त जानने इक क़द्रदां चाहिए ।

पल रहे जो द्वेष-कटुता आज के माहौल में,
सदाक़त के वास्ते इक टुकां चाहिए ।

तोड़ने दीवार 'प्रणयी' इम्तहां में बैठ तू,
आदमी को बदलने आतशज़बाँ चाहिए ।

शहर में रहकर शहद खोजता हूं,
अपने-पराये की हद खोजता हूं ।

उधारी में लेना तो सभी चाहते हैं,
मगर मैं तो केवल नक़द खोजता हूं ।

मेरे दुःख के पलड़े हैं, पहले से भारी,
पकी उम्र के दिन सुखद खोजता हूं ।

मसर्रत के पीछे सभी तो पड़े हैं,
अकेला हूं मैं जो दरद खोजता हूं ।

गर्दिश भरे ज़िंदगी के सफ़र में,
हमदम हो कोई मरद खोजता हूं ।

'प्रणयी' ने हिम्मत न हारी है अब तक,
अदब से जुड़कर सबद खोजता हूं ।

नवगीत

पिछले दिन की याद भुला कर, साथी जब तुम आ जाओगे,
नये साल के नवगीतों से सादर तेरा नमन करूंगा ।।
मैंने गीतों को धरती में, दीनों के आंसू हैं बोये,
मन की पावनता पर बैठी है कमज़ोरी आंख लगाये ।
क्यारी-क्यारी मोती दमके, आज साथ तुम मेरे गाओ,
मेरे पर पत्थर बंधे हैं, कैसे नभ में गमन करूंगा ।।
द्वारे-द्वारे याचक बनकर, मैंने है सम्मान घटाया,
जटिल प्रश्न को हल करने में, उत्तर बन ख़ुद को भरमाया ।
जीवन भर की सफल साधना, आज तुम्हारे नाम समर्पित,
हरने मन की सभी विकलता, तेरे संग अब शमन करूंगा ।।
माटी को जो कुंदन कर दे, ऐसी तपन तुझे दे दूंगा,
पवन पखारे चरण तुम्हारे, पूरा गगन तुझे दे दूंगा ।
पर्वत से सुख की ऊंचाई, तुझे समर्पित कर मन मेरा,
हर मौसम में गीत सुनाने, मन कल्मष का दहन करूंगा ।।
दर्पण से पूछा है मैंने, किसने मेरी छवि को लूटा,
मिली न एक बूंद चातक को, पी-पी कर उसका तन छूटा ।
मन बहलाने इस मेले में, पतझर का श्रृंगार किया है,
तुलसी के बिरवे को लेकर, तेरे आंगन वपन करूंगा ।।

काली मंदिर चौक से पूरब, वार्ड नं. १७, अररिया - ८५४ ३११

एकदम दादाजी जैसा

✍ एंटोन चेखव

बेहद गर्म रात. खुली खिड़कियां. मक्खियां और मच्छर. प्यास जैसे कि नमकीन हरिंग (विशेष प्रकार की एक समुद्री मछली) खा ली हो. मैं अपने बिस्तर पर लेटा हूं. सोने की कोशिश में बार-बार करवटें बदल रहा हूं. दीवार के पार दूसरे कमरे में मेरे दादाजी भी सो नहीं पा रहे हैं और करवटें बदल रहे हैं. हम दोनों को मच्छर काट रहे हैं. इस बात से दोनों तनावग्रस्त हैं और करवटें बदल रहे हैं. दादाजी खांस रहे हैं और मुश्किल से सांस ले पा रहे हैं. उनकी कलफ़ लगी कैप खड़खड़ा रही है.

'बेवकूफ !' वह बुदबुदाया, 'क...क...कमज़ोर-दिमाग़ ! इतनी धुनाई तुम्हारी कभी नहीं हुई होगी, मूर्ख लड़के !'

'किसकी बातें कर रहे हैं दादाजी ?'

'तुम्हें ख़ूब मालूम है... उन्होंने सख़्ती नहीं बरती, बिगाड़कर रख दिया तुम्हें. तुम्हारी खिंचाई तो वे करते ही नहीं हैं...' दादाजी ने एक गहरी सांस ली और फिर उन्हें खांसी का दौरा-सा पड़ गया.

'तुम्हारी तो रोज़ाना तीन बार पिटाई होनी चाहिए, तब जाकर तुम कुछ समझोगे... तुमने थोड़ा-सा मच्छरमार पाउडर क्यों नहीं ख़रीदा ? मैं क्यों तुमसे पूछ रहा हूं ? पागल हूं ?'

'दादाजी, आप मुझे सोने नहीं दे रहे हैं. चुप हो जाइए न.'

'बकवास मत करो. ध्यान करो कि किससे बात कर रहे हो.' दादाजी तेज़ आवाज़ में बोले, 'मैं पूछता हूं कि तुम मच्छरमार क्यों नहीं लाये ? और महाशय जी, आपने इस बदतमीज़ी के साथ बोलने की हिमाकत कैसी की ? तुम्हारे बारे में पहले भी शिकायतें हैं, ऐं ? कल कर्नल दुब्याकिन शिकायत कर रहे थे कि तुम उनकी पत्नी को दूर ले गये ! किससे पूछकर तुम उसे दूर ले गये ? और तुम्हें यह अधिकार किसने दिया ?'

दादाजी बहुत देर तक मुझे झिड़कते रहे और फिर नैतिकता का उपदेश झाड़ने लगे.

'इन सब बातों को मैं आपसे ज़्यादा जानता हूं, दादाजी.' मैंने कहा, 'मैं मानता हूं कि मेरी अक़्ल मुझे दुख देती है, लेकिन इसमें मैं कुछ नहीं कर सकता. मैं एकदम आपकी तरह हूं. आपके गुण मुझ में हैं. ये हड्डियां, ये ख़ून और ये मांस-पेशियां भी आपकी ही देन हैं. अनुवांशिक गुणों से बचना बड़ा मुश्किल है.'

'मैं... मैंने कभी पराई-औरत को नहीं छुआ.... तुम यह कर रहे हो.'

'वाक़ई ? लेकिन दस साल पहले, जब आप साठ साल के थे, याद करिए, जिसे लेकर आप भाग गये थे, वह आपके पड़ोसी की पत्नी थी. वह कोई विधवा नहीं, जवान औरत थी. निकोश्का याद है ?'

'मैं... मैंने शादी कर ली थी उससे....'

'ख़ाक शादी की थी ! निकोश्का निश्चित रूप से साठ साल के आदमी से शादी करने के लिए नहीं बनी थी. कोई भी ख़ूबसूरत नौजवान ऐसी चतुर और ख़ूबसूरत लड़की से शादी कर सकता था. एक नौजवान से उसकी सगाई हो गयी थी, लेकिन अपने रुतबे और पैसे के बल पर आपने बाज़ी पलट दी. आपने उसके मां-बाप को डराया-धमकाया. दो कौड़ी के गहनों की बदौलत आपने उस सत्रह साल की कन्या का भाग्य बदल कर रख दिया. शादी के दिन वह किस क़दर रोयी थी ! बाद में वह कितनी गिड़गिड़ाई थी, बेचारी. और आख़िरकार, आपके एक मातहत के साथ भाग गयी थी. आप जानवर हैं दादाजी.'

'चुप रहो ! इस सबसे तुम्हें क्या मतलब ? ....हालांकि तुमने पांच बार कोशिश की, लेकिन.... लेकिन तुम अपनी बहन दाशा को लूट नहीं पाये... तुम एक बदबूदार आदमी हो. क्यों तुमने सौ रूबियों के लिए उस पर मुक़दमा किया और उन्हें वसूल किया ?'

'मैं आपका ताना समझ रहा हूं. मैं एकदम आपके जैसा हूं, दादाजी. लूटा कैसे जाता है, यह मैंने आपसे ही सीखा है. याद कीजिए... जब आप रसद में अफ़सर थे, तो आपको उफा गुबेरनिया में नियुक्त किया गया था...'

हम काफी समय तक यों ही झगड़ते रहे. दादाजी ने मेरे बीसों अपराध गिनाये. मैंने सब के सब उन्हीं पर टाल दिये. बेहद गुस्साये दादाजी अंततः दीवार खुरचने लगे.

'सुनिए दादाजी', मैंने कहा, 'इस तरह तो हमें कभी नींद नहीं आयेगी. चलिए, थोड़ी देर तैरने और वोदका पीने का मज़ा लेते हैं. फिर हम घोड़े बेचकर सोयेंगे.'

गुस्से में अपने होंठ बिचकाते हुए दादाजी ने कपड़े पहन लिये. हम दोनों नीचे नदी पर गये. ख़ूबसूरत चांदनी रात थी. कुछ देर तैरकर हम वापस आ गये. कांच की सुराही मेज पर रखी थी. मैंने दो गिलास भरे. एक गिलास दादाजी ने लिया. अपने सीने पर उन्होंने क्रॉस बनाया और बोले, 'अगर तुम... करीब दस बार कोशिश करो तो... समझे ! पि... पियक्कड़ !'

वह गुर्राते रहे. गुस्से में पूरा गिलास चढ़ा गये. मसालेदार मांस में भी बुक्का मारा.

क्योंकि मेरी रगों में उन्हीं का लहू है, इसलिए मैंने भी पी और बिस्तर पर लुढ़क गया.

हमारी हर रात इसी तरह गुज़रती है.

अनुवादक : बलराम अग्रवाल

एम-७०, नवीन शाहदरा, दिल्ली - ११० ०३२.

भूत

✍ डॉ. योगेंद्रनाथ शुक्ल

उच्च प्रशासनिक अधिकारी के पद से सेवा निवृत्त हुए लाहोटीजी प्रतिदिन सैर पर जाया करते थे. आज उन्हें कुछ विलंब हो गया था इसलिए पब्लिक स्कूल का प्रांगण बच्चों से भरा दिखाई दे रहा था. बच्चे कोट, पैंट, टाई पहने पंक्तिबद्ध खड़े थे और 'प्रेयर' गा रहे थे. यही 'प्रेयर' बाल्यकाल में वे भी गाया करते थे... वे उसे सुनकर झूम उठे थे.

झाड़ियों की खरखराहट से उनका ध्यान टूटा. ....उनके सामने सिर पर हैट लगाये, हाथ में छड़ी लिये एक विचित्र विदेशी खड़ा था !

"कितने क्रूर हो तुम... बच्चे बोझ से दबे जा रहे हैं और तुम प्रसन्न हो रहे हो...धिक्कार है तुम पर...!" वह बूढ़ा उन्हें घूरता हुआ अंग्रेजी में बोला.

उसकी बात सुनकर लाहोटीजी क्रोध से तमतमा उठे थे. "कौन हैं आप... फ़िज़ूल की बातें किये जा रहे हैं...!" यह कहकर वे आगे बढ़ गये.

वह बूढ़ा उनके पीछे चलता हुआ बड़बड़ा रहा था "अंग्रेजियत की स्थापना के लिए जो प्रयोग मैंने उस समय किया था, उसे तुम लोगों ने सफल कर दिया....तुम भारतीय धन्य हो....! तुमने मुझे अमर कर दिया....! मैकाले अमर हो गया....हॉ....हॉ....हॉ." लाहोटीजी दांत पीसते हुए, उसे मारने के लिए पीछे मुड़े.

वे हतप्रभ थे....वहां कोई नहीं था, बस कुछ शब्द हवा में गूंज रहे थे !

३९०, सुदामा नगर, अन्नपूर्णा रोड, इंदौर - ४५२ ००९

रक्त-दाता

✍ राजकुमार आत्रेय

पत्नी बीमार थी. उसे रक्त दिया जाना था. उसके लिए मैं शहर के ब्लॅड बैंक से रक्त ख़रीदने चला गया. एक बीमार-सा आदमी वहां पहले से ही खड़ा था. वह बूढ़ा तो नहीं था, पर बूढ़े जैसा लग अवश्य रहा था. चेहरे पर बढ़ी हुई दाढ़ी और आंखें बुझी-बुझी सी थीं. कपड़े भी वह मैले और घिसे हुए-से पहने हुए था. ब्लॅड बैंक के पैथालॉजिस्ट ने उसे देखते ही झिड़क दिया- 'तुम फिर आ गये ? अभी तो दस दिन भी नहीं हुए हैं जब तुम ख़ून देकर गये थे. चलो, भागो यहां से !'

'नहीं बाबू जी, आज तो ख़ून ले ही लो...पैसों की बहुत ज़रूरत है.' वह हाथ जोड़ते हुए गिड़गिड़ाया.

'ख़ून तो उसी से लिया जाता है जिसके पास ख़ून हो. अभी तुममें ख़ून ही नहीं है. वैसे भी मैंने पहले ही तुम्हें बता दिया था कि तीन मास बाद ही दूसरी बार ख़ून लिया जा सकता है. फिर आना, अब जाओ.'

'जब मेरा बेटा ही मौत के मुंह में चला जायेगा, तब ख़ून देने का क्या फ़ायदा होगा.' वह धीमे से बुड़बुड़ाया, जैसे उसने अपने आपसे ही कुछ कहा हो. उसकी यह बुड़बुड़ाहट मेरे साथ-साथ पथालॉजिस्ट को भी सुनायी दे गयी थी.

'क्या मतलब ?' पैथालॉजिस्ट पूछे बिना नहीं रह पाया.

'मेरा एक ही बेटा है....वही मरने को है...उसी की दवाई के लिए पैसे चाहिए थे.' इतना कहकर वह फूटफूट कर रोने लगा था.

अब मेरे लिए वहां खड़ा रह पाना असंभव था. मैं ख़ून की दो बोतलों के लिए जो पैसे साथ में लाया था, उन्हें उसके हाथों में थमा कर मैं ब्लॅड बैंक से बाहर निकल आया.

८६४-ए/१२, आज़ाद नगर, कुरुक्षेत्र-१३६११९

कुछ कही, कुछ अनकही

(. . . पृष्ठ ४ से आगे)

आतंकवाद फिरसे सिर उठाने लगा है - दबी-छिपी खलिस्तान की मांग, तेलंगाना की मांग, आंध्र प्रदेश में चुनाव के समय लिये गये सहयोग के कारण नक्सलवादियों के आकाश छूते हौसले, चाहे कश्मीर हो या अयोध्या - आतंकवादी जब चाहें दहशत फैला सकते हैं. इनके पास हथियार कहां से आते हैं ? कौन इनकी मदद करता है ? इस सबकी जानकारी हादसों से पहले होनी चाहिए. मदरसों का अनिवार्य पंजीकरण होना चाहिए. इनके प्रबंधकों के देश-विदेश में संबंध तथा पाठ्यक्रमों का स्वरूप जनता के सामने आना चाहिए. - पाकिस्तान के राष्ट्रपति मुशर्रफ़ भी आतंकवादी घटनाओं में मदरसों की भूमिका स्वीकार चुके हैं. हम क्या किसी बहुत बड़े हादसे का इंतज़ार कर रहे हैं ? यदि अयोध्या के आत्मघाती हमले में आतंकवादी सफल हो जाते तो क्या पूरे देश में बड़े पैमाने पर गुजरात जैसा क़त्लेआम किसी के लिए रोक पाना संभव था ? बहुत सारे प्रश्न हैं, वोट बैंक की राजनीति ताक पर रख कर कुछ ठोस क़दम उठाये जायें तभी कुछ हो पायेगा.

कारगिल के समय यह कहा जाता था कि घुसपैठ की जानकारी बहुत बाद में हुई - यदि अब कुछ ऐसा होता है तो कल्पना कीजिए क्या होगा ! मान लीजिए कि उत्तर-पूर्व से कोई घुसपैठ होती है तो डॉ. मनमोहन सिंह जिन्होंने एक साल की 'परफॉमेन्स' पर स्वयं को मात्र ६० फ़ीसदी मार्क्स दिये हैं, को शायद अख़बारों के माध्यम से यह जानकारी मिलेगी, फिर वे अंतर्आत्मा की आवाज़ श्रीमती सोनिया गांधी जी से पूछेंगे कि मैडम क्या करना है ? फिर 'कॉमन मिनिमम कार्यक्रम' देखा जायेगा, अगर उसमें इस बारे में कुछ है तो ठीक है अन्यथा खाने पर बुलाकर वामदलों से पूछा जायेगा कि आप लोगों का क्या कहना है ? तब जाकर कहीं कोई निर्णय हो पाये ! लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होगी.

इस अंक में पाठकों के अभिमतों के आधार पर *'कथाबिंब कहानी पुरस्कार-२००४'* के परिणामों की घोषणा प्रकाशित की गयी है. सभी पुरस्कार विजेताओं को हमारी ओर से हार्दिक बधाई ! शीघ्र ही पुरस्कार की राशि विजेताओं को भेजी जा रही है.

अरविंद

लेटर बॉक्स

(...पृष्ठ ३ का शेष भाग)

"बहुत दिनों बाद, जब हमारी कनपटियों पर उग आये हैं, सफ़ेद बालों के झाड़," अपने शहर की कविता और कवियों की स्मृति को सहेजता हुआ कवि प्रकाश श्रीवास्तव का आत्मकथ्य और उनकी सात ग़ज़लों का पाठ अच्छा लगता है.

'कथाबिंब' में अक्सर कुछ अछूते और नये रचनाकारों की रचना प्रक्रियाएं और रचनाएं प्रकाशित होती रही हैं जिनका अपना विशेष महत्व रहा है. पाठकों और रचनाकारों के बीच एक आत्मीय राग स्थापित करना संपादकीय दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है. मेरे कवि मित्र की ग़ज़लें आज भी उतनी ही बिंदास हैं यह देख कर उनकी जीवनी के प्रति गहरी आश्वस्ति पैदा होती है. वो आज लगभग तीस वर्षों बाद अनेक ऐसे रचनाकारों को अपने साथ जुड़ा महसूस करते हैं जिनमें से अनेक ने अपने पेशे बदल लिये कितने असफल सुविधाभोगियों में रह गये कितनों ने कलम रख दिये. कितने बड़े नाम हाशिये पर चले गये लेकिन उन सबकों उन सबकी कोशिशो को सहेजता हुआ प्रकाश श्रीवास्तव का आत्मकथ्य अच्छा और स्पर्शी है उनकी ग़ज़लों की तरह.

'ख़ुद को पहचान जो नहीं पाता / वो बहुत बदनसीब होता है ।।' 'वक़्त के पांच में कांटे हैं निकाले कोई/मुल्क ढहने को है, बढ़ के बचा ले कोई ।।' आदि पंक्तियां उनके रचनात्मक सरोकार की गवाही तो देती हैं, उनकी सतत संघर्षशील मानसिकता का भी प्रमाण बन जाती हैं. प्रकाश भाई से मुझे इतना ज़रूर कहना है - तेरा कलम रहे और तू रहे, जुबान रहे.

✣ दानिश

सी २८/१२०ए, लेलिया बाग, वाराणसी-२२१ ००१

'कथाबिंब' कई सालों से लगातार पढ़ता आ रहा हूं. पर अक्तू-दिसं. ०४ की कहानियां पढ़कर आपको पत्र लिखने से स्वयं को रोक नहीं पा रहा हूं. यों तो कहानियां प्रायः हर एक साहित्यिक पत्रिका में छपना अनिवार्य सा हो गया है. लेकिन कुछ ऐसी पत्रिकाएं हैं, जिनमें कहानियां ही प्रमुखता पाती हैं, उनमें 'कथाबिंब' का स्थान निश्चय ही महत्वपूर्ण है. अधिकतर कहानियां जो आजकल छप रही हैं और पढ़ी जा रही हैं उनकी विशेषता यह है कि उन्हें आप पढ़ें और भूल जायें. वे न कहीं आपको छूती हैं और न आपकी स्मृति में कोई स्थान बनाती हैं. उपभोक्तावाद ने जिस तरह वस्तुओं को 'यूज एंड थ्रो' के लायक बना दिया है उसी तरह पत्र-पत्रिकाओं में कहानियों की स्थिति बनती जा रही है. पर 'कथाबिंब' का यह अंक इस मामले में अपवाद है. इसमें सैली बलजीत, संगीता आनंद और नरेंद्र छाबड़ा की कहानियां ऐसी हैं जिन्हें पढ़कर यदि कोई पाठक बरबस भुलाना भी चाहेगा तो भुला नहीं पायेगा. सचमुच ऐसी कहानियां काफी दिनों बाद पढ़ने को मिली हैं.

✣ सुरेश पंडित

३८३, स्कीम नं. २, लाजपत नगर, अलवर-३०१ ००१.

हमकदम लघु-पत्रिकाएं

(प्रस्तुत सूची में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो या किसी पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया हो तो कृपया सूचित करें.)

कथादेश (मा.) - हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., १००९ इंद्रप्रकाश बिल्डिंग, २१ बाराखंभा रोड, नयी दिल्ली - ११०००१
दाल-रोटी (मा.) - अक्षय जैन, १३ रश्मन अपार्टमेंट, एस. एल. रोड, मुलुंड (प.), मुंबई - ४०० ०८०
मधुमति (मा.) - वेदव्यास, राजस्थान साहित्य अकादमी, हिरन मगरी, सेक्टर-४, उदयपुर ३१३ ००२
वागर्थ (मा.) - विजय दास, भारतीय भाषा परिषद, ३६-ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता - ७०० ०१७
समाज प्रवाह (मा.) - मधुश्री कावरा, गणेश बाग, जवाहर लाल नेहरू रोड, मुलुंड (प.), मुंबई ४०० ०८०
साहित्य अमृत (मा.) - विद्यानिवास मिश्र, ४/१९ आसफ अली मार्ग, नयी दिल्ली - ११० ००२
साहित्य क्रांति (मा.) - अनिरुद्ध सिंह सेंगर 'आकाश,' भार्गव कॉलोनी, गुना ४७३ ००१ (म. प्र.)
शुभ तारिका (मा.) - उर्मि कृष्ण, ए-४७ शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी - १३३ ००१
शिवम् (मा.) - विनोद तिवारी, जय राजेश, ए-४६२, सेक्टर-ए, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०३९
अरावली उद्घोष (त्रै.) - वी पी. वर्मा 'पथिक', ४४८ टीचर्स कॉलोनी, अंबामाता स्कीम, उदयपुर ३१३ ००४
अपूर्व जनगाथा (त्रै.) - डॉ. किरन चंद्र शर्मा, डी-७६६, जनकल्याण मार्ग, भजनपुरा, दिल्ली - ११० ०५३
अभिनव प्रसंगवश (त्रै.) - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ, डी-१३१ रमेश विहार, निकट ज्ञान सरोवर, अलीगढ़ (उ. प्र.)
असुविधा (त्रै.) - रामनाथ शिवेंद्र, ग्राम-खड़ुई, पो. पन्नूगंज, सोनभद्र - २३१ २१३ (उ. प्र.)
अक्षरा (त्रै.) - विजय कुमार देव, मं. प्र. रा. समिति, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - ४६२ ००२
आकंठ (त्रै.) - हरिशंकर अग्रवाल / अरुण तिवारी, महाराणा प्रताप वार्ड, पिपरिया - ४६१ ७७५ (म. प्र.)
औरत (त्रै.) - मेनका मल्लिक, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४
अंचल भारती (त्रै.) - डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी, अंचल भारती प्रिंटिंग प्रेस, रा. औ. आस्थान, गोरखपुर मार्ग, देवरिया - २७४ ००१
अंतरंग (त्रै.) - प्रदीप बिहारी, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४
अंतरंग संगिनी (त्रै.) - दिव्या जैन, गोविंद निवास, सरोजिनी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६
कंचन लता (त्रै.) - भरत मिश्र 'प्राची', डी-८, सेक्टर-३ए, खेतड़ी नगर - ३३३ ५०४
कृति ओर (त्रै.) - विजेंद्र, सी-१३३, वैशाली नगर, जयपुर - ३०२ ०२१
कथन (त्रै.) - रमेश उपाध्याय, १०७, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली - ११० ०६३
कथा समवेत (त्रै.) - शोभनाथ शुक्ल, कल्लूमल मंदिर, सब्जी मंडी, चौक, सुल्तानपुर - २२८ ००१
कल के लिए (त्रै.) - डॉ. जयनारायण, 'अनुभूति', विकास भवन, बहराइच - २७१ ८०१ (उ. प्र.)
कहानीकार (त्रै.) - कमल गुप्त, के ३०/३६ अरविंद कुटीर, वाराणसी २२१ ००१
कौशिकी (त्रै.) - कैलाश झा किंकर, क्रांति भवन, चित्रगुप्त नगर, खगड़िया - ८५१ २०४
गुंजन (त्रै.) - मोहन सिंह रावत, रोहिला लॉज परिसर, तल्लीताल, नैनीताल - २६३ ००२
तटस्थ (त्रै.) - डॉ. कृष्ण बिहारी सहल, विवेकानंद विला, पुलिस लाइन्स के पीछे सीकर - ३३२ ००१
तेवर (त्रै.) - कमलनयन पांडेय, १५८७/४, उदय प्रताप कॉलोनी, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर - २२८ ००१
दस्तक (त्रै.) - राघव आलोक, "साराजहां", मकदमपुर, जमशेदपुर - ८३१ ००२
दीर्घाबोध (त्रै.) - कमल सक्सेना, अस्पताल चौक, ईसागढ़ रोड, अशोक नगर ४७३ ३३१ (म. प्र.)
द्वीप लहरी (त्रै.) - डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी, हिंदी साहित्य कला परिषद, पोर्ट ब्लेयर ७४४ १०१
डांडी-कांटी (त्रै.) - मधुसिंह बिष्ट, भगवान नगर, नलपाड़ा, सैंडोज बाग, कापुर बावड़ी, ठाणे ४०० ६०७
नारी अस्मिता (त्रै.) - डॉ. रचना निगम, १५ गोयागेट सोसायटी, शक्ति एपार्टमेंट, बी-ब्लॉक, एस/३, वडोदरा - ३९० ००४
निमित्त (त्रै.) - श्याम सुंदर निगम, १४१५, 'पूर्णिमा', रतनलाल नगर, कानपुर २०८ ०२२
परिधि के बाहर (त्रै.) - नरेंद्र प्रसाद 'नवीन,' पीयूष प्रकाशन, महेंद्रू, पटना - ८०० ००६
पश्यंती (त्रै.) - प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, बी-१/१०४ जनकपुरी, नयी दिल्ली - ११० ०५८
प्रगतिशील आकल्प (त्रै.) - डॉ. शोभनाथ यादव, पंकज क्लासेज, पोस्ट ऑफिस बिल्डिंग, जोगेश्वरी (पू.), मुंबई ४०० ०६०
प्रयास (त्रै.) - शंकर प्रसाद करगेती, 'संवेदना', एफ-२३, नयी कॉलोनी, कासिमपुर, अलीगढ़ - २०२ १२७
प्रेरणा (त्रै.) - अरुण तिवारी, सी-१६०, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०१६
पुरुष (त्रै.) - विजयकांत, निराला नगर, गोशाला रोड, मुजफ्फरपुर ८४२ ००२ (बिहार)
पुरवाई (त्रै.) - पद्मेश गुप्त, (भारतीय संपर्क : ऋचा प्रकाशन, डी-३६ साउथ एक्सटेंशन, पार्ट-१, नयी दिल्ली ११० ०४९
बूंद-बूंद सागर (त्रै.) - डॉ. सुरेंद्र प्रसाद 'केसरी', पोस्ट बॉक्स नं २, रक्सौल ८४५ ३०८
प्रोत्साहन (त्रै.) - जीवतराम सेतपाल, 'सिधु' वेसमेंट, २०५/३१, मैन रोड, शीव (पू.) मुंबई - ४०० ०२२
भाषा सेतु (त्रै.) - डॉ. अंबाशंकर नागर, हिंदी साहित्य परिषद, २ अमर आलोक अपार्टमेंट, वालवाटिका, मणिनगर, अहमदाबाद - ३८० ००८
मसि कागद (त्रै.) - डॉ. श्याम सखा 'श्याम,' १२ विकास नगर, रोहतक १२४ ००१
मुहिम (त्रै.) - बल्ला यादव / रणविजय सिंह सत्यकेतु, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४ ३०१

युग साहित्य मानस (त्रै.) - सी. जय शंकर बाबू, १८/७९५/एफ/८-ए, तिलक नगर, गुंतकल - ५१५ ८०१ (आं. प्र.)
युगीन काव्या (त्रै.) - हस्तीमल 'हस्ती,' २८ कालिका निवास, नेहरू रोड, सांताक्रुज, मुंबई - ४०० ०५५
वर्तमान जनगाथा (त्रै.) - बलराम अग्रवाल, डी-२२ शांतिपथ, पत्रकार कॉलोनी, तिलक नगर, जयपुर - ३०२ ००४
वर्तमान संदर्भ (त्रै.) - संगीता आनंद, देवकीधाम, ए-३ वेस्ट बोरिंग कैनाल रोड, पटना - ८०० ००१
विषय वस्तु (त्रै.) - धर्मेंद्र गुप्त, २७४ राजधानी एन्क्लेव, रोड नं. ४४, शकूर बस्ती, दिल्ली - ११० ०३४
वैखरी (त्रै.) - डॉ. अमरेंद्र, लाल खां दरगाह लेन, विश्वविद्यालय पथ, भागलपुर - ८१० ००२
संबोधन (त्रै.) - कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली - ३१३ ३२४
समकालीन सृजन (त्रै.) - शंभुनाथ, २० बालमुकुंद मक्कर रोड, कलकत्ता - ७०० ००७
साखी (त्रै.) - केदारनाथ सिंह, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, प्रेमचंद पार्क, बेतिया हाता, गोरखपुर - २७३ ००१
सदभावना दर्पण (त्रै.) - गिरीश पंकज, जी-५० नया पंचशील नगर, रायपुर - ४९२ ००१
सार्थक (त्रै.) - मधुकर गौड़, १/ए/३०३ व्यू ओसन, व्यू एंपायर कॉम्प्लेक्स, महावीर नगर, कांदिवली (प.), मुंबई - ४०० ०६७
संयोग साहित्य (त्रै.) - मुरलीधर पांडेय, २०४/ए' चिंतामणि अपार्टमेंट, आर.एन.पी. पार्क, काशी विश्वनाथ नगर, भयंदर, मुंबई ४०११०५
सही समझ (त्रै.) - डॉ. सोहन शर्मा, ई-५०३, गोकुल रेजीडेंसी दत्तानी पार्क, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, कांदिवली (पू.), मुंबई - ४०० १०१
स्वातिपथ (त्रै.) - कृष्ण 'मनु', साहित्यांजन, बी-३/३५, बालुडीह, मुनीडीह, धनबाद - ८२८ १२९
शब्द संसार (त्रै.) - संजय सिन्हा, पो. बॉक्स नं, १६४, आसनसोल ७१३३०१
शुरुआत (त्रै.) - वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, ३० आकाश गंगा परिसर, पुरानी बस्ती, मनेंद्रगढ़
शेष (त्रै.) - हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहार पुरा, जोधपुर -३४२ ००२
हिंदुस्तानी ज़बान (त्रै.) - डॉ. सुशीला गुप्ता, महात्मा गांधी बिल्डिंग, ७ नेताजी सुभाष रोड, मुंबई - ४०० ००२
अविरल मंथन (अ.) - राजेंद्र वर्मा, ३/२९ विकास नगर, लखनऊ - २२६ ०२०
कला (अ.) - कलाधर, नया टोला, लाइन बाजार, पूर्णियां - ८५४ ३०१
मित्र (अ.) - मिथिलेश्वर, महाराजा हाता, कतिरा, आरा - ८०२ ३०१
पुनः (अ.) - कृष्णानंद कृष्ण, दक्षिणी अशोक नगर, पथ सं-८वी, कंकड़ बाग, पटना - ८०० ०२०
सरोकार (अ.) - सदानंद सुमन, रानीगंज, मेरीगंज, अररिया - ८५४ ३३४
समीचीन (अ.) - डॉ. देवेश ठाकुर, बी-२३ हिमाचल सोसायटी, असल्फा, घाटकोपर (पू.), मुंबई ४०० ०८४
समीहा (अ.) - शेखर सावंत, 'देवायतन', प्रो. कॉलोनी, वेगूसराय - ८५१ १०१
सम्यक (अ.) - मदन मोहन उपेंद्र, ए-१० शांतिनगर (संजय नगर), मथुरा २८१ ००१

'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार-२००४'

'कथाबिंब' के प्रकाशन का यह २६ वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २००४ के 'कथाबिंब' के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई !

प्रथम पुरस्कार (१००० रु.)

शहतूत पक गये हैं ! - *संतोष श्रीवास्तव*

द्वितीय पुरस्कार (७५० रु. प्रत्येक)

संभालिए अपना राजपाट ! - *रामदेव सिंह* ● **महाभिनिष्क्रमण** - *जयनारायण*

प्रोत्साहन पुरस्कार (५०० रु. प्रत्येक)

● **चक्रव्यूह** - *सैली बलजीत* ● **उसे हवा भी नहीं छू सकती** - *मंगला रामचंद्रन*

● **एक थी सांवली** - *संगीता आनंद* ● **संगदाह !** - *डॉ. नवनीत ठक्कर*

● **दोस्त बड़ोनी, तुम कहां हो !** - *महावीर खांल्टा*

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

प्रारंभ से लेकर अब तक 'कथाबिंब' ने काफी उतार-चढ़ाव देखे हैं. इस दौरान जिन व्यक्तियों या संस्थाओं से हमें सहयोग मिला हम उन सभी के आभारी हैं. 'कथाबिंब' का देश में, एक व्यापक पाठक वर्ग बन गया है. हमारी इच्छा है कि 'कथाबिंब' और अधिक लोगों द्वारा पढ़ी जाये.

आजीवन सदस्यों के हम विशेष आभारी हैं. जिनके सहयोग ने हमें ठोस आधार दिया है. सभी आजीवन सदस्यों से निवेदन हैं कि वे एक या दो या अधिक लोगों को आजीवन सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. ***यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव हो तो कृपया हमें लिखें.***

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, मुंबई
५) डॉ. ए. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, मुंबई
११) श्री अमर ठाकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) डॉ. राजनारायण पांडेय, मुंबई
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैया लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, पंचमढ़ी
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कलकत्ता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, अनपरा, सोनभद्र
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम, सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, दिल्ली
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, नवी मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह बिष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, बुलंदशहर
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, पटना
५७) श्री मनोहर लाल टाली, मुंबई
५८) श्री एन. एम. सिंघानिया, मुंबई
५९) श्री ओ. पी. कानूनगो, मुंबई
६०) डॉ. ज. वी. यख़्मी, मुंबई
६१) डॉ. अजय शर्मा, जालंधर
६२) श्री राजेंद्र प्रसाद 'मधुबनी', मधुबनी
६३) श्री ललित मेहता 'जालौरी,' कोयंबटूर
६४) श्री अमर स्नेह, नवी मुंबई
६५) श्रीमती मीना सतीश दुबे, इंदौर
६६) श्रीमती आभा पूर्वे, भागलपुर
६७) श्री ज्ञानोत्तम गोस्वामी, मुंबई
६८) श्रीमती राजेश्वरी विनोद, नवी मुंबई
६९) श्रीमती संतोष गुप्ता, नवी मुंबई
७०) श्री विशंभर दयाल तिवारी, मुंबई
७१) श्री अभिषेक शर्मा, नवी मुंबई
७२) श्री ए. वी. सिंह, निंबोहड़ा, चितौड़गढ़
७३) श्री योगेंद्र सिंह भदौरिया, मुंबई
७४) श्री विपुल सेन 'लखनवी', मुंबई
७५) श्रीमती आशा तिवारी, मुंबई
७६) श्री गुप्त राधे प्रयागी, इलाहाबाद
७७) श्री महावीर रवांल्टा, बुलंदशहर
७८) श्री रमेश चंद्र श्रीवास्तव, फतेहगढ़
७९) डॉ. रमाकांत रस्तोगी, मुंबई
८०) श्री महीपाल भूरिया, मेघनगर, झाबुआ (म. प्र.)

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

८१) श्रीमती कल्पना बुद्धदेव 'व्रज', राजकोट
८२) श्रीमती लता जैन, नवी मुंबई
८३) श्रीमती श्रुति जायसवाल, मुंबई
८४) श्री लक्ष्मी सरन सक्सेना, कानपुर
८५) श्री राजपाल यादव, धनबाद
८६) श्रीमती सुमन श्रीवास्तव, नयी दिल्ली
८७) श्री ए. असफल, भिंड (म. प्र.)
८८) डॉ. उर्मिला शिरीष, भोपाल
८९) डॉ. साधना शुक्ला, फतेहगढ़
९०) डॉ. त्रिभुवन नाथ राय, मुंबई
९१) श्री राकेश कुमार सिंह, आरा (बिहार)
९२) डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी, भुज-कच्छ
९३) डॉ. उमाकांत बाजपेयी, मुंबई
९४) श्री नेपाल सिंह चौहान, नाहरपुर (हरि.)
९५) श्री रूप नारायण तिवारी 'वीरान', बिलासपुर
९६) श्री जे. पी. टंडन 'अलौकिक', फ़र्रुख़ाबाद
९७) श्री शिव ओम 'अंबर,' फ़र्रुख़ाबाद
९८) श्री आर. पी. हंस, मुंबई
९९) सुश्री अल्का अग्रवाल सिगतिया, मुंबई
१००) श्री मुन्नू लाल, बलरामपुर (उ. प्र.)
१०१) श्री देवेंद्र कुमार पाठक, कटनी
१०२) सुश्री कविता गुप्ता, मुंबई
१०३) श्री शशिभूषण बडोनी, मसूरी
१०४) डॉ. वासुदेव, रांची
१०५) डॉ. दिवाकर प्रसाद, नवी मुंबई
१०६) सुश्री आभा दवे, मुंबई
१०७) सुश्री रश्मि सक्सेना, मुंबई
१०८) श्री मुनी राज सिंह, मुंबई
१०९) श्री प्रताप सिंह सोढ़ी, इदौर
११०) श्री सुधीर कुशवाह, ग्वालियर
१११) श्री राजेंद्र कुमार सक्सेना, दिल्ली
११२) श्री एन. के. शर्मा, नवी मुंबई
११३) श्रीमती मीरा अग्रवाल, दिल्ली
११४) श्री कुलवंत सिंह, मुंबई

: प्राप्ति-स्वीकार :

चन्ना चरणदास (कहानी संग्रह) : **बलराम अग्रवाल**, प्रखर प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. १५०/-

तीसरा पड़ाव (क. सं.) : **मंगला रामचंद्रन**, रामकृष्ण प्रकाशन, सावित्री सदन, तिलक चौक, विदिशा (मं. प्र.) ४६४ ००१. मू. ८५/-

कदंबम् (क. सं.) : **मंगला रामचंद्रन**, शिवानी बुक्स, ४८५५/२४, हरबंस स्ट्रीट, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १२५/-

अनुवांशिकी (क. सं.) : **कुंवर प्रेमिल**, मांडवी प्रकाशन, आर-१०, एफ/५९ राजनगर, ग़ाज़ियाबाद (उ. प्र.). मू. १०० /-

पंच-पंखुड़ी (क. सं.) : **रामदेव प्रसाद शर्मा**, मीनाक्षी प्रकाशन, एम. बी. ३२/२, बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२. मू. ४०/-

अजब नार्सिस डॉट कॉम (नाटक) : **प्रबोध कुमार गोविल**, राही सहयोग संस्थान,
६० शिव कॉलोनी, रीको औद्योगिक क्षेत्र, रूपवास, निवाई-३०४०२२ (राज.). मू. ५०/-

हम सब गुलाम हैं (एकांकी संग्रह) : **रमेश मनोहरा**, अमृत प्रकाशन,
एफ-१८, देशपांडे कॉम्प्लेक्स, हुजरात रोड, नया बाज़ार, ग्वालियर-४७४००९. मू. १५०/-

पथ के दीप (संस्मरण / भेंट वार्ताएं) : **आलोक भट्टाचार्य**, ए. बी. एंड एच. क्रियेशन्स,
'ओंकार', ४/आर. एच. १०, एम. आई. डी. सी., डोंबिवली (पू.)-४२१ २०३. मू. ३००/-

बीसवीं सदी की लघुकथाएं (चार खंडों में) : **सं. बलराम**, अमरसत्य प्रकाशन,
१०९, ब्लॉक बी, प्रीत विहार, दिल्ली-११००९२. मू. १०००/- (चारों खंड)

अनुभूतियों की महक (काव्य) : **दर्शन राही**, सरोज प्रकाशन, ६४६-६४७, कटरा, इलाहाबाद-२११००२. मू. १५०/-

अपने-अपने चेहरे (क. सं.) : **अक्षय गोजा**, मीनाक्षी प्रकाशन, एम. बी. ३२/२, बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२. मू. ९०/-

बूंद बिन सागर (ग़. सं.) : **अक्षय गोजा**, मीनाक्षी प्रकाशन, एम. बी. ३२/२, बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२. मू. ८०/-

हम नदी की धार में (ग़. सं.) : **कैलाश झा 'किंकर'**, मीनाक्षी प्रकाशन,
एम. बी. ३२/२, बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२. मू. १२५/-

'किरण देवी सराफ ट्रस्ट' (मुंबई) के सौजन्य से प्रकाशित पुस्तकें

भारत महान (बाल-गीत) : मंजु गुप्ता, मू. १५०/-
शाम-ए-सुख़न (ग़ज़ल संग्रह) : अकरम रज़ा 'अकरम', मू. १००/-
मैं (काव्य संग्रह) : अंजलि नीरा, मू. १००/-
बेरोज़गारी (शोध ग्रंथ) : मंगला पठारे, मू. ७०/-
खौलती स्याही (काव्य) : रामनाथ सिंह 'राही', मू. ५०/-

T. A. CORPORATION

8, Dewan Niketan, Chembur Naka, Chembur, Mumbai - 400 071.
✆ (Off) : + 91-22-2522 3613 / 5597 4515 • Fax : + 91-22-25223631
Email : tac@vsnl.com • Web : www.chemicalsandinstruments.com

-: Offers :-

- H.P.L.C. GRADE CHEMICALS
- SCINTILLATION GRADE CHEMICALS
- GR GRADE CHEMICALS
- BIOCHEMICALS
- STANDARD SOLUTIONS
- HIGH PURITY CHEMICALS
- ELECTRONIC GRADE CHEMICALS
- LR GRADE CHEMICALS
- INDICATORS
- LABORATORY INSTRUMENTS

Manufactured by :

PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch, Gujarat,
✆ : 02646-272332
email : response@prabhatchemicals.com
website : www.prabhatchemicals.com

Stockist of :

- **Sigma, Aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A)**
- **Riedel (Switzerland)**
- **Merck (GDR)**
- **Lancaster (UK)**
- **Strem (UK)**

हमारा लक्ष्य :
हमारी जनता के लिए
बेहतर जीवन-स्तर

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड

भारत सरकार, परमाणु ऊर्जा विभाग

बीएआरसी/ब्रिट वाशी कॉम्प्लेक्स, सेक्टर-20, एपीएमसी फल बाजार के सामने, वाशी, नवी मुंबई-400 705.
फैक्स क्रमांक : 022 2556 2161, 2558 1319, वेबसाइट : www.britatom.com, ई. मेल : sales@ britatom.com.

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

KUKREJA CONSTRUCTION CO.

kukreja

LUXURIOUS
1, 2 & 3 BHK FLATS
AVAILABLE

Swimming Pool,
Health Club &
Garden.

Contact
55988787/55975525-28
Cell. : 2064 2122

Projects
are Also
Available at

MULUND
BHANDUP
VILE PARLE
DADAR
NAVI MUMBAI

"Built to Stand the Test of Times !"

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ ६२८४.